ललित

प्रश्नोत्तरांजलि

लेखक—

दाताद्याल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज

—:o:—

सम्पादक

नन्दूभाई

(निज़ामाबाद दक्षिण)

—:o:—

अ० सहायक सम्पादक

देवीचरन मीतल

लेखराजनगर, अलीगढ़

—*—

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

प्रस्तावना

आज का वातावरण कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि धर्म, सम्प्रदाय, मजहब व जाति पांति के नाम पर व्यर्थ के लड़ाई झगड़े होते दिखाई देते हैं। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि किसी एक मत के अनुयायी कहलाने वालों को उस धर्म के आदर्शों की सच्ची समझ नहीं है। और न वे उन आदर्शों पर चलते हुये प्रतीत होते हैं बल्कि जहाँ हैं वहीं पर अटके हुये हैं। मार्ग का तो अर्थ ही चलना है आदर्शों पर बिना चले हुये अथवा उन आदर्शों पर चलने वाले संत, महात्मा सत्-पुरुष, आचार्य, पथ प्रदर्शकों की संगत के बिना इसकी समझ आना कठिन है। 'अहिंसा' एक साधारण सा शब्द है। यह कोई नया आदर्श नहीं है। हिन्दू शास्त्रों में, योग पातंजलि में, जैन और बुद्ध धर्म में इसका वर्णन मिलता है। महात्मा गाँधी ने भी इस आदर्श को अपनाया और इसके बल पर संसार की सबसे बड़ी शक्ति को हिला दिया। क्या यह आदर्श केवल हिन्दुओं की ही सम्पत्ति है अथवा जैन या बौद्धों की ही है। वास्तविक बात यह है कि कोरे नाम से नहीं बल्कि उस पर चलने से काम बनेगा और तभी भेदभाव दूर हो सकेंगे।

इसलिये देश की वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखकर नानक और बुद्ध धर्म के आदर्शों पर महर्षि 'शिव' ने जो व्याख्या की है उसको सूक्ष्म रूप से जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है ताकि लोग असलियत को समझ जांय और भेदभाव दूर हो जाँय। परमसंत दयाल फकीर चन्द का लेख भी इसी विषय से सम्बन्धित है। आशा है जो भाई पढ़ेंगे, सोचेंगे विचारेंगे और अमल करेंगे वे अवश्य लाभ उठायेंगे और भेदभाव के मिटाने और गलत उलझनों से निकलने में सफल होंगे।

मालिक सबका कल्याण करे। —सम्पादक

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

भूमिका

प्रश्न किया जाय और उसका उत्तर स्पष्ट सरल और सुगम दे दिया जाय तो गूढ़ तत्त्वों का रहस्य भी शीघ्र समझ में आ जाता है। इसी दृष्टि को लेकर महर्षि शिव्रतलाल जी महाराज ने बड़ी जटिल समस्याओं का समाधान किया है जिन की उलझन में पड़े हुये जीव भटक रहे हैं और वर्तमान समय के लोगों को ऐसी उलझनों से निकलने के लिये ऐसी सामिग्री की बड़ी आवश्कता है।

इस पुस्तक की पहिली व दूसरी बैठक में स्त्री पुरुष की पहिचान के विषय को लेकर बड़े स्पष्ट रूप से यह बताया है कि इस रचना में जो दशा इस स्थूल जगत की है वही ऊपर के लोकों अर्थात् मानसिक और अध्यात्मिक जगत की भी है। पिंडे सो ब्रह्माण्डे। इसी क्रम में स्त्री पुरुष की रचना और स्वर्ग नर्क के विषय को भी वर्णन कर दिया गया है। तीसरी बैठक में मन के रूप को बतलाया गया है और मन को काबू में लाने के लिये बड़ा सरल महा मंत्र भी बतलाया है।

चौथी बैठक में अवतारों और सन्तों के प्रगट होने और उनके कार्य्यों का वर्णन किया गया है और बुद्ध भगवान के आदर्शों की व्याख्या की गई है।

पांचवी बैठक में जीव, ईश्वर, ब्रह्म, तुरिया और तुरियातीत की बड़ी ही स्पष्ट व्याख्या है। इनको ध्यान पूर्वक पढ़ने पर मनुष्य की बहुत सी उलझनें निवारण हो जायेंगी।

—सम्पादक

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

R. S.

ललित

प्रश्नोत्तरांजलि

पहिली बैठक

ऊपर के लोकों में स्त्री पुरुष की पहिचान

जिज्ञासु—ऊपर के लोकों में स्त्री पुरुष रहते हैं या नहीं ?

शिव—यह प्रश्न एक दम मानसिक और विचार सम्बन्धी है, व्यवहारिक नहीं है इसलिये हम नहीं समझ सकते कि इस के उत्तर में हमारा मुँह खोलना कहाँ तक उचित होगा।

जिज्ञासु—कुछ यों ही कहिये जिसमें सोचने और विचारने का अवसर मिले। इस पर कुछ वादविवाद थोड़ा ही करना है।

शिव—पहिले तुम अपने प्रश्न को और भी खोल कर स्पष्ट कहो, कि स्त्री पुरुष की पहिचान से तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?

जिज्ञासु—हमारा मुख्य अभिप्राय तो यह है कि आया इस संसार के समान वहाँ भी सृष्टि कर्म्म का प्रवाह चलता रहता है और स्त्री पुरुष के संयोग से बच्चे उत्पन्न होते हैं या नहीं ? और आया जिस प्रकार यहाँ स्त्री पुरुष के रूप में भिन्नता रहती है वहाँ भी है या नहीं ?

शिव—पहिले एक प्रश्न था। अब दो हो गये। अच्छा! अब उनके उत्तर सुनिये। इस लोक के परे जो दूसरा लोक है वहाँ स्त्री पुरुष की पहिचान है और वह एक दूसरे से पहिचाने जाते हैं परन्तु वहाँ इस प्रकार की उत्पत्ति नहीं होती जैसी हमारे इस लोक या इस संसार में होती है। वहाँ की दशा हमारे इस संसार की दशा से विलक्षण है।

जिज्ञासु—उस दूसरे लोक की थोड़ी सी व्याख्या कर दीजिये तो मैं आपका आशय भली भाँति समझ जाऊँ और साथ ही उदाहरण के साथ प्रमाण भी देते चलिये।

शिव—प्रगट रूप से तीन लोक हैं। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिव् या जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति। इनको चाहे तुम अवस्था कहो या लोक कहो, इसका तुम्हें अधिकार है। यह तीनों एक दूसरे के साथ मिले जुले भी हैं और अलग अलग भी हैं। जागृत की अवस्था में रहकर भी बहुत से मनुष्य स्वप्न देखा करते हैं जैसे कवि, फिलासफर और साधू महात्मा इत्यादि। यह तुम जानते ही हो कि स्वप्न देखना वास्तव में अन्तरिक्ष जगत् का व्यवहार करना है। इसी प्रकार जागृत अवस्था में भी रहकर बहुत से मनुष्य स्वाभाविक या अभ्यास द्वारा दिव् लोक की अवस्था अपने में उत्पन्न कर लेते हैं जैसे समाहित चित् वाले मनुष्य, योगी, साधू, मस्त और अवधूत इत्यादि। यह सब जागते हुये भी सुषुप्ति का आनन्द लेते हैं। यह बात या तो स्वभाविक किसी किसी में होती है या अभ्यास और साधन द्वारा प्राप्त कर ली जाती है, जैसे गिरगिट में यह गुण है कि वह जागते हुये जब चाहे स्वप्न की रंग बिरंगी अवस्था अपने आप में उत्पन्न कर सकता है या कछुआ जब चाहे स्वभाविक रीति से जागते हुये सुषुप्ति की गहरी नींद का

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

आनन्द ले सकता है। इसी प्रकार एक दो नहीं किन्तु अनगिनत उदाहरण दिये जा सकते हैं। जो बात इन जीव जन्तुओं में हैं वही किसी किसी मनुष्य में भी हो सकती हैं। यदि तुम विचार करोगे तो इसकी सम्भावना तुम्हारी समझ में आ जायगी। तुम एक विशेष लोक में बसते हुये अपने आपको किसी और लोक का बासी बना सकते हो। तुमने सुना होगा "रहै झोंपड़े में और स्वप्न देखै महलों का।" झोंपड़े में रहकर महल का ध्यान करना यह स्वप्नावस्था की लीला है और जागते हुये आँखों की खुली हुई दशा में भी अचेत और बेसुध रहना सुषुप्ति का दृश्य है।

यह तीन लोक हैं। इन्हीं को त्रिलोकी कहते हैं। यह रचना में अलग अलग स्थान भी हैं और साथ ही इनका बिम्ब और प्रतिबिम्ब मनुष्य, पशु, सारे जीव जन्तु, और वनस्पति आदि में भी है। प्रगट रूप से तो जीवधारी जागृत, वनस्पति स्वप्न और पत्थर इत्यादि सुषुप्ति अवस्था के सदृश मान लिये गये हैं परन्तु यह तीनों अवस्थायें और तीनों लोक अधिकता या न्यूनता के साथ सब में पाये जाते हैं। किसी में यह अधिक उभरते हैं, किसी में कम और किसी में (हमारी दृष्टि से) एक दम नहीं। अब तुमने तीन लोक की असलियत समझ ली होगी। कहो यह समझ में आया कि नहीं?

जिज्ञासु—भली भांति समझ गया। आप जिस प्रकार समझाते हैं संसार में और कौन समझा सकता है? कट्टर और पक्षपाती चाहे कुछ ही कहें परन्तु मैं सच्ची बात कहता हूं। यह तीन लोक पहिले सुने थे परन्तु समझे कुछ भी नहीं थे। आज उनकी असलियत का पता लग गया। अब आगे चलिये।

शिव—तीनों लोकों में तीन विशेष अवस्थायें हुआ करती हैं

और उन्हीं अवस्थाओं में उन लोकों में उत्पत्ति की प्रथा चलती रहती है और इसी प्रथा पर विचार करने से तुम समझ जाओगे कि किन किन लोकों में स्त्री पुरुष की सम्भावना है और किन में नहीं है। उत्पत्ति का विषय ही इसे उत्तमता के साथ समझा सकेगा। दूसरे से यह असम्भव है।

जिज्ञासु—बहुत ठीक है।

शिव—इस लोक में स्त्री पुरुष के संयोग से सृष्टि होती है। इसका नाम मैथुनी जगत है और यह जागृत अवस्था का संसार है। यहाँ तो तुम को स्पष्ट रूप से स्त्री पुरुष का ज्ञान हो जाता है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं है।

जिज्ञासु—बहुत ही ठीक है।

शिव—अब देवताओं के लोक और स्वप्नावस्था की ओर ध्यान दो। यहाँ मैथुन नहीं किया जाता। केवल मैथुन का विचार ही होता है और स्त्री पुरुष के व्यवहारिक संयोग या मिलाप के विचार ही से धार फूट निकलती है और वह स्वप्नावस्था की उत्पत्ति का चित्र अंकित करती है। इसकी भी आवश्यकता नहीं है कि स्त्री पुरुष हों या न हों। स्वप्नावस्था का जगत् केवल मानसिक भावना से बनता बिगड़ता रहता है। जिस बात की इच्छा या बासना हुई बस वह वस्तु प्रगट हो गई। उत्पत्ति वास्तव में नाम है दो अवस्थाओं के मिलाप से तीसरी अवस्था के प्रगट होने का। इसलिये विचार मण्डल में स्त्री पुरुष की भिन्नता रहती है और उसके होने से कभी इन्कार नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि देवताओं के साथ देवियाँ भी रहती हैं। इसलिये स्वप्न लोक में भी मानसिक दृष्टि से स्त्री पुरुष का ज्ञान रहता है। तुम इसको समझे या नहीं ?

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

जिज्ञासु—यह तो मैं समझ गया परन्तु स्वप्न की अवस्था भी कुछ है जो स्पष्ट दिखलाई नहीं देती।

शिव—उसको ऐसा होना ही चाहिये क्योंकि स्वप्न लोक वास्तव में विचार मण्डल ही है। विचार या मानसिक भावना में होने और न होने दोनों की सम्भावना है। जागृत में तो केवल सम्भव का ध्यान रहता है। यहां सम्भव और असम्भव दोनों की सम्भावना है। यह वह लोक है जहाँ पशु, वृक्ष, पहाड़ इत्यादि सबको बोलने की शक्ति मिल जाती है। यहाँ मनुष्य पशुओं के साथ मानसिक संयोग करता है और दोनों में प्रेम और प्यार की बातें भी कभी कभी होती रहती हैं। गोल माल तो उसे होना ही है। इसकी वह व्याख्या जो तुम चाहते हो कठिनाई से की जा सकती है। तुम जो नित्य नित्य स्वप्न देखते हो उन पर विचार करो, आप ही समझ जाओगे। हम बहुत सी बातें अपने मुख से कहना नहीं चाहते। तुम आप सोच सकते हो। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया गया। इस अन्तरिक्ष जगत् में जो देवी देवताओं का मंडल है उसमें स्त्री पुरुष अपने अपने मानसिक रूप में रहते हैं और इसलिये उनकी भिन्नता और भिन्न अवस्था का ज्ञान प्राप्त करना कठिन नहीं है।

जिज्ञासु—इस लोक का देवताओं से विशेष सम्बन्ध क्यों बतलाया गया है? हम मनुष्य होकर भी उसमें जाते और रहते हैं।

शिव—जब तुम उस लोक में जाते हो तुम भी देवता हो जाते हो, मनुष्य नहीं रहते। देवता कहते हैं दिव्य शक्ति वालों को। वह दिव्य शक्ति तुम में भी आ जाती है। तुम हवा में उड़ने लगते हो। केवल विचार और ध्यान से नदी नाले, जंगल,

पहाड़, महल इत्यादि बना लेते हो। यही देवताओं का गुण है

जिज्ञासु—क्या इस लोक में जो कंकड़, पत्थर, पशु-प
इत्यादि दिखाई देते हैं वह भी देवता ही हैं ?

शिव—क्यों नहीं ! जब जीव जन्तु और पशु बोलने लगते हैं और कंकड़ पत्थर में क्रिया शक्ति का अनुमान होता है और वह हम पर अपना प्रभाव डालते हैं तो फिर वह देवता क्यों नहीं हुये ! यहाँ दैविक सृष्टि है। जो कुछ है सब देवता ही है।

जिज्ञासु—अच्छा ! यह तो नई बात सुनने में आई।

शिव—तुमको हमारी सङ्गत में यों ही नित्य नई नई बातें सोचने के लिये मिला करेंगी। जम कर सत्संग तो करो।

जिज्ञासु—परन्तु इसका क्या प्रमाण है कि स्वप्नावस्था में मैथुन नहीं किया जाता ?

शिव—यदि तुम हमारी बातों को भूले नहीं हो तो हमने कहा है कि यहाँ सम्भव और असम्भव दोनों की सम्भावना है। इस लोक में तो मनुष्य मर कर अपने मृतक शरीर को भी देखता है। जब विचार मण्डल में हर बात की सम्भावना है तो इस स्वप्नावस्था में भी हर बात की सम्भावना हो सकती है। हाँ, यह मण्डल, यह अवस्था, यह लोक, विचार मण्डल से मुख्य विशेषता रखता है। यहाँ संयोग करते भी हैं और नहीं भी करते। जिनसे संयोग नहीं करना चाहिये वह आकर सामने खड़ी हो जाती हैं परन्तु यह असभ्य बातें हैं इसलिये इनकी ओर ध्यान न देना ही अच्छा है। तुम आप सोच समझ लो। हम तुमको संस्कार दे रहे हैं।

जिज्ञासु—परन्तु महाराज ! एक बात और है।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

शिव—वह क्या ?

जिज्ञासु—वह यह है कि इस लोक अर्थात् जागृत अवस्था में भी हम बिना संयोग अर्थात् मैथुन के सृष्टि होते देखते हैं— मच्छर, मक्खी, बिच्छू इत्यादि यों ही संसार में पहिले आप ही आप उत्पन्न हो जाते हैं और फिर उनसे मैथुनी सृष्टि उत्पन्न होने लगती है। इसी प्रकार जब मनुष्य पहिले पहिल उत्पन्न हुआ होगा तब बिना संयोग और मैथुन ही के उत्पन्न हुआ होगा। तत्पश्चात् मैथुन द्वारा सृष्टि की प्रथा चल निकली। यहां भी नित्य नित्य देखने में आता है। फिर हम क्यों किसी एक मण्डल या लोक को किसी एक बात के लिये विशेषता दें ?

शिव—भाई ! तुम बड़े ही कम समझ जिज्ञासू निकले। बहुत जल्द बातों को भूल जाया करते हो। क्या हमने तुमसे नहीं कह दिया है कि तीनों लोक आपस में मिले जुले भी हैं। इस जागृत के लोक में भी तो पहिले मानसिक सृष्टि होकर तब मैथुनी सृष्टि होती है। हाँ, यहाँ मैथुन अधिकता के साथ होता है इसलिये यह जगत् मैथुनी कहलाता है। पहिले जो मनुष्य उत्पन्न हुये थे वह देव योनी में थे। अब वह मनुष्य योनि में हैं। केवल इतना ही भेद है। अब भी समझे कि नहीं ?

जिज्ञासु—हाँ, समझ गया और बहुत बड़ी बात समझ में आई। दो लोकों में तो आपने दिखा दिया कि वहाँ स्त्री पुरुष हैं। अब तीसरे लोक में चलिये।

शिव—तीसरा लोक सुषुप्ति है यहाँ न जागृत है न स्वप्न है। यहां न विचार है न कर्म्म है। यहां क्या है ? केवल बासना हैं परन्तु वह बासना इस प्रकार की अनिर्वचनीय और अकथ है कि हम क्या कोई भी मनुष्य पूर्ण व्याख्या के साथ

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

उसका वर्णन नहीं कर सकता। यह है, इसके होने में सन्देह नहीं, क्योंकि हम तुम सभी लोग सुषुप्ति अर्थात् गहरी नींद की अवस्था में जाते हैं। इससे इन्कार कौन कर सकता है परन्तु स्पष्ट रीति से बता नहीं सकते कि वह क्या है ? अनुभव हो जाता है परन्तु वह जिसका अनुभव है उसी तक रहता है। इसको कारण जगत् भी कहते हैं। इसमें भी सृष्टि है परन्तु वह बीज रूप है। सुषुप्ति में जाकर कोई मरता नहीं और यदि कोई दिनों, महीनों या वर्षों की सुषुप्ति में चला जाये तब भी उसकी शारीरिक बनावट में परिवर्त्तन होता रहता है। इसलिये वह भी एक विशेष लोक है। यहाँ भी स्त्री पुरुष की भिन्नता की सम्भावना है परन्तु वह दोनों इस प्रकार मिले जुले रहते हैं कि साधारण मनुष्य को उनकी पहिचान महा कठिन है। फिर भी उनके होने से इन्कार नहीं है। वहाँ भी यह हैं।

जिज्ञासू—महाराज ! फिर किसी प्रकार उदाहरण से इसे समझा दीजिये। वास्तव में यह महा गूढ़ विषय है।

शिव—हाँ, सुनो। हम को यहाँ पुराणों की सहायता लेनी पड़ेगी, क्योंकि पुराण ऐसे ही अवसर के लिये बनाये गये हैं और बड़ी उत्तमता के साथ चित्र दिखा दिखा कर तत्व (असलियत) को समझाते हैं। उन पुराणों के लेखक भी महा अनुभवी पुरुष थे। सम्भव है इनकी भाषा और लिखने का रङ्ग ढङ्ग कुछ हो। उनका सम्बन्ध एक विशेष समय से था परन्तु इससे किसी अनसमझ और अज्ञानी ही को इन्कार होगा कि वह आवश्यक और लाभदायक नहीं हैं। पुराणों ने एक एक बात को कई कई ढङ्ग से समझाया है। इन तीनों लोकों का चित्र वह लोकों के अधिष्ठाताओं के रूप में दिखाते हैं। तुम भी सोचो विचारो, तीन लोक हैं— दिव्, अन्तरिक्ष

और पृथ्वी । इनकी तीन मुख्य अवस्थायें जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति हैं। इनके तीन अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। ब्रह्मा के साथ गायत्री या सावित्री है । यह दोनों अलग अलग हैं। ब्रह्मा पुरुष और सावित्री स्त्री है। विष्णु के साथ लक्ष्मी है। यह दोनों भी अलग अलग हैं। विष्णु पुरुष और लक्ष्मी स्त्री है परन्तु शिव भगवान की मूर्ति एक है। उसको अर्द्धाङ्गी बोलते हैं—आधा शिव आधी पार्वती। यह दोनों अलग अलग नहीं किन्तु मिले जुले हुये हैं। यदि तुमने अब तक ऐसा चित्र या ऐसी मूर्ति न देखी हो तो अब जाकर देख लेना, बोध हो जायेगा। पुराणों के ऐसा चित्र बनाने का आशय यह था कि शिव में स्त्री पुरुष दोनों मिले जुले हुये हैं। एक को दूसरे से अलग दिखाना कठिन तो अवश्य है परन्तु उनके होने में कुछ भी संदेह नहीं है। तीसरे लोक में स्त्री पुरुष का यह रूप है ।

जिज्ञासु—परन्तु ऐसा रूप क्यों बनाया गया ?

शिव—क्या कहना है ? बात पूछो और बात की जड़ पूछो। भले मानुष ! हमने तुम से कह जो दिया कि सुषुप्ति के लोक में यह दोनों अवस्थायें मिल जुल कर एक जैसी हो रहती हैं। सुषुप्ति के धनी, अधिष्ठाता और मालिक शिव भगवान ही तो हैं! और कौन इसका मालिक है ? यहाँ आकर वह एक हो जाते हैं। यह अद्वैत पद है परन्तु हम क्या करें ! न तो तुमने अभ्यास किया न सत्सङ्ग किया। समझायें भी तो कैसे समझायें ? सुनो, सत् रज तम तीनों लोकों के तीन गुण हैं। सत् विष्णु है। यह देवताओं के लोक का धनी है। यहाँ उपासना है, प्रकाश है क्योंकि विचार और भावना ही में उपासना और प्रकाश होता है। रज ब्रह्मा है। यह मनुष्यों

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

के लोक का धनी है। यहाँ कर्म्म है अन्धकार है क्योंकि कर्म्म अन्धकार ही में होता है। तम शिव है। यह ज्ञानियों के लोक का धनी है। यहाँ एकता है, अद्वैत है क्योंकि सुषुप्ति ही अद्वैत और एकत्व का लक्ष्य है। यह बात है। यदि अब भी न समझो तो हम क्या करें! हम अपनी समझ बूझ और शक्ति के अनुसार तो तुम को समझाते ही रहते हैं।

जिज्ञासु—आप अप्रसन्न न हों। मैं तो जिज्ञासू हूँ। पूछना मेरा काम और समझाना आप का काम है।

शिव—परन्तु समझो तब तो बात है। हम खोल खोल कर तुमको बताते जाते हैं कि सुषुप्ति में अद्वैत और एकत्व है और तुम फिर भी पूछते जाते हो कि शिव की अर्द्धङ्गी मूर्त्ति क्यों बनाई गई? इस मूर्त्ति के बनाने पर भी तो तुम जैसे लोग सार तत्व को नहीं समझते। यदि पुराण ऐसी मूर्त्तियाँ न बनाते तो उसका अनुमान कैसे होता! मूर्ख इसी प्रकार कर्म्म और उपासना के बन्धन में पड़े हुये ज्ञान की ओर जाना ही नहीं चाहते और जीव, ईश्वर और प्रकृति के विचार में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। यह प्रत्यक्ष देखते भी हैं कि जाग्रत में अनेकता है। यह पुरुष प्रकृति और ईश्वर का लोक है। स्वप्न में द्वैत है। वहां हम और हमारे विचार के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। सुषुप्ति में अद्वैत है। वहां एक के अतिरिक्त दूसरा नहीं है। मूर्ख नित्य इन तीनों लोकों में बराबर चक्कर लगाते रहते हैं और फिर भी हर लोक में, हर अवस्था में जागृत ही के कार-बार पर वाद-विवाद करते हैं। ऐसे लोगों को हम क्या समझायें! इनकी तो बुद्धि पर पत्थर जैसे पड़े हैं। वाद-विवाद और शास्त्रार्थ करने पर तुले रहेंगे परन्तु सार को न ग्रहण कर सकेंगे। यही तुम्हारी भी दशा है।

जिज्ञासु—सच है, फिर क्या करें ? इस समय एक विशेष विचार की लहर का प्रभाव है। मैं भी उसके भँवर में आगया। अब जाकर आपकी सङ्गत में कुछ समझ बूझ आने लगी है।

शिव—अब तो तुम्हारा प्रश्न हल हो गया। यदि पूछ चुके हो तो हम दूसरा काम काज करें ?

जिज्ञासु—नहीं महाराज ! अभी बहुत बातें इसके सम्बन्ध में पूछनी हैं।

शिव—तो फिर पूछो।

जिज्ञासु—आपकी इस व्याख्या से एक नई बात सोचने के लिये मिली है। कर्म्म ब्रह्मा का मार्ग है वह अन्धकार है और केवल जागृत का विषय है। उपासना विष्णु का मार्ग है। वह भक्ति और प्रेम है अर्थात् विचार और ध्यान का विषय है। ज्ञान शिव का साधन है। वह प्रकाश, एकत्व और अद्वैत है। यही बात है कि और कुछ ?

शिव—बात तो यही है परन्तु ज्ञान को साधन न कहो। साधन तो केवल कर्म्म और उपासना ही तक होता है यह साक्षात्कार है—जैसे जागृत में कर्म्म करते हो यह ब्रह्मा का मत है। स्वप्न में विचार और ध्यान का अभ्यास रहता है। यह विष्णु का मत है। सुषुप्ति में करना धरना कुछ नहीं, उस में एकत्त्व और अद्वैत है और अद्वैत में कोई क्या करे ! क्या सुषुप्ति में तुम भक्ति और कर्म्म करते हो ? सोचो तो सही और फिर हम से प्रश्न करो। बिना सोचे हुये कभी प्रश्न न किया करो। यही सुषुप्ति अद्वैत की सीमा है और यह ज्ञान है। यह सबको प्राप्त है। जीव जन्तु, पशु पक्षी, बनस्पति इत्यादि सब में है। यह प्राप्त नहीं की जाती। यह यों ही आप ही आप है।

इसमें तुम्हारे प्रश्न के अनुसार स्त्री पुरुष दोनों मिल जुलकर एक हो जाते हैं और विवेक शक्ति कुछ काम नहीं देती। यह वह स्थान है जहां पुरुष और प्रकृति मटर के दो दानों के समान मिलकर एक हो जाते हैं। उत्थान के समय स्वप्न में यह अलग अलग होकर मानसिक रचना करते हैं तब पुरुष और प्रकृति का नाम पाते हैं। प्रकृति और कुछ नहीं केवल विचार मात्र है। यह द्वैत पद का स्थान है। दो के अतिरिक्त यहां तीसरा कोई नहीं है। फिर उस स्थान को छोड़कर सब जागृत में आते हैं तो अनेकता हो जाती है और यह संसार जो तुमको भासता है बन जाता है। यह इनकी राम कहानी है।

जिज्ञासू—यह राम कहानी बड़ी ही ललित और रोचक है।

शिव—फिर भली भाँति आनन्द लूटो। बस हो गया या अभी कुछ और पूछना है।

जिज्ञासू—यहाँ तक तो मैं समझ गया कि तीसरे लोक में आकर पुरुष प्रकृति मिलकर एक हो गये, जैसा हम इस दृश्यमान जगत् में वृक्षों और बनस्पतियों में देखते हैं, जिनमें बहुधा स्त्री और पुरुष दोनों मिले जुलें रहकर अपनी रचना किया करते हैं। केवल किसी किसी वृक्ष में स्त्री पुरुष की पहिचान होती है। मैं यह भी समझ गया कि धातुओं में भी स्त्री पुरुष दोनों सुषुप्ति के सदृश मिल जुल जाते हैं परन्तु एक प्रश्न यह है कि हम को या किसी को इसका ज्ञान कैसे हुआ, क्योंकि सुषुप्ति में अज्ञान का परदा फिर भी पड़ा रहता है और हम उठकर कहते हैं कि "ऐसे सोये कि लोक परलोक का ध्यान न रहा।" इससे अज्ञान का पता मिल जाता है। आप केवल यह बता दीजिये कि यह ज्ञान हमको कैसे होता है कि सुषुप्ति

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

में अद्वैत और एकत्व पना है ? फिर मैं आपका और अधिक समय न लूँगा।

शिव—सुनो ? प्रश्न कठिन है। इसी लिये मैं कहता हूँ कि साधन करो, जीवन को साधन सम्पन्न बनाओ जिसमें अनुभव बढ़े और आप ही आप सत् का साक्षात्कार हो जाये। सिखाये पूत दरबार नहीं जाते। हम से यदि सुन भी लिया तो क्या हुआ ? तुम्हारे इस प्रश्न का पहिला उत्तर यह है कि अनुमान से हमको एक होने का पता लगता है क्योंकि सुषुप्ति में एक के अतिरिक्त दूसरी अवस्था नहीं रहती। यदि दूसरी अवस्था रहती तो सब को पता लग जाता परन्तु कोई भी गवाही नहीं देता कि इस अवस्था में दो हैं। यदि होते तो एक दूसरे की कहता, सुनता, समझता, बूझता। जब एक ही एक है तो फिर कौन किस की कहे ? किससे कहे ? किसकी सुने ? क्या समझे ? और क्या बूझे ? यह तो तुम्हारी समझ में आगया। क्यों ? है या नहीं ?

जिज्ञासू—सच है ! अनुमान से ऐसा ज्ञान हो जाता है परन्तु आप कुछ और कहना चाहते हैं। उसे भी कह डालिये जिसमें यह विषय भली भाँति स्पष्ट होजाये।

शिव—हम क्या कहें ? कौन सत् का जिज्ञासू है जिससे यह गुप्त रहस्य खोल खोल कर कहे जायें ? बाँसुरी में बाहिर बहुत से छिद्र रहते हैं। यह सब उसके मुँह हैं परन्तु इन सब के पीछे एक और मुँह छुपा हुआ है, जिसका एक शब्द सब के मुँह से निकलता है। यह असलियत है। यह चौथी अवस्था है जिसमें तीनों लोक, तीनों अवस्थायें, तीनों देवता तीनों गुण और सब जो तीन तीन हैं, गुथे पड़े हुये हैं। उसको तुरिया कहते हैं। जो तीनों अवस्थाओं को पार करके उस

तक पहुँच जाते हैं वह ज्ञानी होकर शान्त हो जाते हैं फिर कुछ नहीं रहता और न जानने बूझने की आवश्यकता रहती है। यह ज्ञानियों की तुरिया नहीं है। यह कुछ और है । तुम अभ्यास करो। **सुरत शब्द योग** का साधन सीखो, तब उसकी समझ आयेगी । इस पर हम तुम से अधिक बात चीत न करेंगे। केवल गुरुबाणी सुनाकर तुमको बिदा करेंगे।

शब्द

जग जागृत भौ दुख मूल।
स्वप्ना भी दुख सुख सूल॥
सुषुप्ति घर कुछ आराम।
वह भी नाहिं ठहरन धाम॥
तीनों में भरमत आठों याम।
पूरा नहीं कहीं विस्राम॥

———

निज भेद कहे नहिं कोई।
बिरथा नर देही खोई॥
मैं सोच करा अति भारी।
तब सतगुर आन सँभारी॥
कर दया भेद बतलाया।
तुरिया पद मारग गाया॥
तुरिया से आगे बरना।
फिर उस से आगे चलना॥
तिस के भी परे लखाया।
उस के भी पार सुनाया॥
कुछ आगे और बुझाया।
तिस परे और समझाया॥

वहाँ से पुनि आगे भाषा।
निज धाम मुख्य यह राखा॥

(सार बचन रा० स्वा० छन्द)

दूसरी बैठक

ऊपर के लोकों में स्त्री पुरुष की पहिचान

जिज्ञासु—कल आपने जो बचन कहा था मैंने उस पर विचार और मनन किया। वास्तव में आप की बातें सच्ची हैं। शास्त्रों के विचार से भी यही बात सिद्ध होती है परन्तु मैं कुछ और ही प्रश्न मन में लाया था और वह और का और हो गया। पूछना था कुछ और पूछ गया कुछ और! और आपको भी कहना था कुछ, और कह गये कुछ!

शिव—जैसा प्रश्न होगा वैसा ही उत्तर होगा। अब जो कुछ तुमको पूछना है पूछो।

जिज्ञासु—क्या आप के विचार में स्वर्ग नर्क में स्त्री पुरुष के सम्बन्ध का व्यवहार होता रहता है?

शिव—यह प्रश्न व्यर्थ और निरर्थक है। तुम स्वर्ग नर्क की व्याख्या करो, तब हम उत्तर दें।

जिज्ञासु—स्वर्ग वह जगह है जहाँ पुण्य के बदले मनुष्य सुख भोगता है।

शिव—तो जहाँ सुख भोगने की सम्भावना और सामग्री होगी वहाँ तो स्त्री पुरुष यों ही रहेंगे, क्योंकि यदि तुम ने शास्त्रों ही को समझ बूझ के साथ पढ़ा है तो इन्द्री का धर्म्म सुख ही बताया गया है। इन्द्री स्त्री पुरुष के पहिचान का चिन्ह है।

जिज्ञासु—नर्क उसको कहते हैं जहाँ पाप के बदले दुख भोगना पड़े।

शिव—तो वहाँ दुख होगा और दुख भोगने की सम्भावना और सामग्री होगी। वहाँ भी तो स्त्री पुरुष यों ही रहेंगे क्योंकि दुख कहते हैं इच्छा की सामग्री के न मिलने को तथा इच्छा के विरुद्ध सामग्री के साथ मिलाये जाने को। जहां तक उत्पत्ति और सृष्टि की प्रथा है वहां तक यह इन्द्रियां ही सुख और दुख की पात्र सिद्ध होती हैं। नहीं तो फिर दुख होता कैसे? यदि तुम यह कहो कि दुख मन को होता है तो मन भी तो इन्द्री है और जब इन्द्री हुई तो शरीर होगा और जब शरीर होगा तब उसमें स्त्री पुरुष की पहिचान का चिन्ह क्यों न होगा? दुख सुख का ज्ञान शरीर ही को होता है। यह शरीर भी तो दुख सुख भोगता है। इसलिये नर्क और स्वर्ग दोनों ही में स्त्री पुरुष की पहिचान के चिन्ह रहेंगे।

जिज्ञासु—परन्तु क्या आप भी स्वर्ग और नर्क और मतों के समान स्थायी मानते हैं?

शिव—हम सब कुछ मानते हैं और कुछ भी नहीं। तुम अपना प्रश्न स्पष्ट शब्दों में खोलकर कहो।

जिज्ञासु—लोगों का विश्वास है कि नर्क और स्वर्ग इस संसार से भिन्न स्थान हैं।

शिव—और हमने कल तुमसे क्या कहा था? तुम शीघ्र ही बातों को भूल जाते हो। संसार इस लोक को कहते हैं और स्वर्ग नर्क परलोक को कहते हैं; साधारण मनुष्यों की भाषा में यह संसार वरे है और स्वर्ग नर्क परे हैं। इनसे उनके मण्डल, विशेष स्थान और अवस्था का मानना असत्य तो नहीं है।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

जिज्ञासू—यह स्वर्ग और नर्क फिर हैं कहाँ ?

शिव—यह स्वप्न लोक में हैं जहां तुम स्वप्न देखते हो। वहां ही यह स्वर्ग नर्क हैं। यदि पुण्य का विचार मन में दृढ़ता के साथ जम जाता है तो उसी के फल भोगने की जगह स्वप्न लोक में स्वर्ग बन जाती है और यदि पाप का ध्यान मन में दृढ़ता के साथ बस जाता है तो उसी के फल भोगने की जगह स्वप्न लोक में नर्क बन जाती है। यह और कुछ नहीं है केवल स्वप्न का स्थान है और जब स्वप्न का स्थान नियत है तो फिर स्वर्ग नर्क का स्थान क्यों न होगा ?

जिज्ञासू—स्वप्न का स्थान कहाँ है ?

शिव—मन के इन्द्रियों के स्थान से हटने और अपने आप में फुरने की जगह स्वप्न का स्थान है।

जिज्ञासू—तब तो हम ही में होगा ?

शिव—और तुम दूर कहाँ ढूँढ़ने जाते हो ? जो कुछ है वह तुम्हारे अन्दर ही तो है।

जिज्ञासू—परन्तु हम कहां रहते हैं ! हमारा शरीर तो मर जाता है इसलिये स्वर्ग नर्क दूसरी जगह और दूसरे स्थान में भोगा जाता है।

शिव—तुम मर कहाँ जाते हो ! स्थूल शरीर नष्ट हुआ। सूक्ष्म तो रह ही जाता है। वह आकाश मण्डल में चक्कर लगाता है और मन का सूक्ष्म शरीर में बर्तना ही तो स्वप्न और स्वर्ग नर्क की अवस्था दिखलाता है। यह स्वर्ग नर्क कुछ भी नहीं, केवल मानसिक अवस्था का नाम है--जैसे जागृत में तुम किसी विशेष विचार को चित्त देने से स्वप्न अवस्था में उसी विचार के स्वप्न देखते हो इसी प्रकार संसारी जीवन में पाप और

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

पुण्य के विचार की दृढ़ता से आप अपने लिये अपने स्वर्ग और नर्क बना लिया करते हो। इनका सम्बन्ध केवल तुम से और तुम्हारे विचार ही से है।

जिज्ञासू—परन्तु किसी किसी मनुष्य के विचार में इसी जीवन में सुख भोगना स्वर्ग और दुख भोगना नर्क है।

शिव—यह भी सच है। क्या कल हमने तुमसे नहीं कहा था कि जागृत स्वप्न और सुषुप्ति तीनों मिली जुली भी रहती हैं और अलग अलग भी रहती हैं। केवल विचार से इनका पता लगता है।

जिज्ञासू—कहने को तो आप कह गये थे परन्तु मैं भूल गया।

शिव—तो फिर हम क्या करें? हमारा क्या दोष है?

जिज्ञासू—परन्तु इस लोक में एक तीसरी अवस्था भी दिखलाई देती है जो न स्त्री की है न पुरुष की और जिसे हिजड़ापन या नपुंसकता कहते हैं। जब यह इस लोक में है तो परलोक में भी होगी।

शिव—अवश्य होगी! तो फिर हुआ क्या?

जिज्ञासू—तब स्त्री पुरुष की पहिचान तो न रही और स्त्री पुरुष के हर मण्डल में रहने का सिद्धान्त असत्य सिद्ध हुआ।

शिव—असत्य नहीं किन्तु सत्य है। यहाँ तुम इस प्रकार समझो कि संसार में हिजड़ों के साथ हिजड़ियां भी तो हुआ करती हैं। स्त्री पुरुष का चिन्ह तो रहता ही है। हाँ, उनकी पूर्ण वृद्धि और उन्नति में कमी और त्रुटि रह जाती है इसलिये वह सृष्टि कर्म्म का व्यवहार नहीं कर सकते

जिज्ञासु—परन्तु इसकी समझ कैसे आई ?

शिव—यह प्रश्न तुमको किसी डाक्टर या हकीम से करना चाहिये। हमारे पास आकर केवल धर्म्म और धार्मिक विषय की बात चीत होनी चाहिये। यह तो तुम करते नहीं, हिजड़ा और हिजड़ी का पोथा खोल बैठे। परन्तु फिर भी सुनो। यदि कोई पुरुष के समान मूत्र करे तो हिजड़ा और स्त्री के समान करे तो हिजड़ी है। हम केवल इतना तुम्हें बता सकते हैं। इससे अधिक न हमको ज्ञान है न हमारा अनुमान काम करता है।

जिज्ञासु – परन्तु यह क्यों ऐसा होता है ?

शिव—अब तो तुम वैद्यक और डाक्टरी ले बैठे। इनको दूर हटाओ। हम यह समझते हैं कि जब स्त्री पुरुष दोनों बल में बराबर होते हैं तो उनके मिलाप के समय संयोग के परिणाम में त्रुटि होने के कारण हिजड़े और हिजड़ी उत्पन्न होते हैं। जब पुरुष स्त्री से बलवान होता है तब लड़की और जब स्त्री पुरुष से अधिक बलवान होती है तब लड़के उत्पन्न होते हैं। इतना तो हमने सुन रक्खा है और इतना ही कह सकते हैं। यदि तुम और अधिक पूछना चाहो तो अभी कुशल है किसी डाक्टर के पास चले जाओ। यह हमारे बूते की बात नहीं है और न हमने इसे विचारा है।

जिज्ञासु—अब इस पर मैं कुछ प्रश्न न करूँगा। आप घबराइये नहीं।

शिव—तो बस या और भी कुछ है ?

जिज्ञासु—बस कैसे ! अभी तो और बहुत सी बातें पूछनी हैं। फिर यह अवसर कब हाथ आयेगा।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

शिव—तो पूछ चलो।

जिज्ञासु—अब प्रश्न यह है कि लोक या परलोक में स्त्री पुरुष की भिन्नता क्यों रक्खी गई है ? इसकी क्या आवश्यकता थी ?

शिव—वाह ! क्या कहना है ! अब तक तो तुम हमसे वैद्यक और डाक्टरी का विषय पूछ रहे थे अब प्राकृतिक नियम का विषय ले बैठे परन्तु बात बड़ी ही रोचक है। सुनो ! इसके कई कारण हैं। "अकेला सो बावला, दुहेला सो सुहेला।" स्त्री पुरुष सुख भोगने के लिये बने हैं। यह पहली बात है दूसरी बात यह है कि सृष्टि (रचना) की आदि में हमारे शास्त्रों के अनुसार उसने कहा, "मैं एक से अनेक हो जाऊँ।" इससे अनेकता और सृष्टि का व्यवहार चल निकला क्योंकि एक से कुछ नहीं होता। दो अवस्थाओं के मिलाप से तीसरी अवस्था उत्पन्न होती है। यदि स्त्री पुरुष न होते तो फिर एक से अनेक होने का विषय यों ही दबा पड़ा रहता। तीसरी बात यह है कि आदि में जिस प्रकार दोनों मिलकर एक थे वैसे ही इस संयोग या मैथुन से बराबर उस अकथ सुख का स्मरण होता रहता है कि जो पहिले था। चौथा कारण तीसरे से भिन्न नहीं है। वह यह है कि स्त्री पुरुष मिलकर पूर्ण होते हैं। नहीं तो अधूरे रहते हैं।

जिज्ञासु—वाह ! यह न कहिये ! तब पुरुष अधूरा है ?

शिव—हाँ ! बिना प्रकृति के पुरुष अधूरा ही है—आधा यह आधा वह। दोनों मिलकर के रचना करते हैं। रचना एक से नहीं हो सकती।

जिज्ञासु—यह एक दम नई बात सुनने में आई। तो ईश्वर भी अधूरा ही हुआ ?

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

शिव—क्यों नहीं! यदि ईश्वर पुरुष ही है और प्रकृति उसके साथ नहीं है तो वह पूर्ण कब हुआ! वह तो अधूरे का अधूरा ही रहा।

जिज्ञासु—ईश्वर के अधूरेपने की आपने एक ही कही। आपने उसे भी अधूरा बनाकर छोड़ा।

शिव—हमने क्या बनाया? तुम आप विचार लो। जिस प्रकार बिना स्त्री के यहाँ कोई पुरुष काम का नहीं समझा जाता, "उठल्लू का चूल्हा, न घर का न द्वार का"। इसी प्रकार वह ईश्वर भी तो होगा जिसके साथ प्रकृति नहीं। किसने विष्णु को बिना लक्ष्मी के, ब्रह्मा को बिना सावित्री या गायत्री के और शिव को बिना पार्वती के देखा है? यह मानी हुई और समझी हुई बात है। जब तक प्रकृति न हो पुरुष कैसा! जब तक कारीगरी नहीं तब तक कारीगर कैसा! इसी प्रकार जब तक ऐश्वर्य न हो तब तक ईश्वर कैसा! यह कारीगरी और ऐश्वर्य सब प्रकृति ही है और उसी की सहायता से ईश्वर भी काम करता है जैसे तुम अपने घर की स्त्री को साथ रखते हुये गृहस्थी का आनन्द भोगते हो। जब स्त्री न हो फिर कौन क्या करे और कैसे करे!

जिज्ञासु—ब्रह्मा विष्णु इत्यादि तो देवता हैं। उनके साथ देवियों का होना आवश्यक है।

शिव—इसी प्रकार ईश्वर भी देवता है और ईश्वर के साथ ऐश्वर्य का होना आवश्यक है।

जिज्ञासु—यदि हम उसको न मानें तो क्या हानि होगी?

शिव—तब वह ईश्वर न होगा। कुछ और ही वस्तु ठह-रेगा। मानना तो तुमको अवश्य ही पड़ेगा। जब एक को

मानोगे तब अनेक को क्यों न मानोगे। मानो तो दोनों को मानो। न मानो तो किसी को भी न मानो।

जिज्ञासु—जो एक और अनेक से परे है वह क्या होगा?

शिव—वह मन वाणी का विषय नहीं है। कल उसे संकेत के रूप में चौथी अवस्था कहा जा चुका है।

जिज्ञासु— आपकी बातें सचमुच बड़ी अनुभवी होती हैं।

शिव—यदि और कुछ कहना है तो कहो।

जिज्ञासु—यह तो बताइये कि पुरुष क्यों स्त्री पर लट्टू हो जाता है? और स्त्री क्यों पुरुष पर जान देती है?

शिव—स्त्री में कमी है। पुरुष में भी कमी है। जो वस्तु पुरुष के पास है वह स्त्री के पास नहीं है और जो स्त्री के पास है वह पुरुष के पास नहीं है। इसलिये उनमें आकर्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है। स्त्री स्त्री है। पुरुष पुरुष है। दोनों मिल कर अपनी कमियों की पूर्त्ति करना चाहते हैं। यही कारण इस आकर्षण का है जैसा कि हम अभी कह चुके हैं।

जिज्ञासु—बुद्धि तो यों कहती है कि जाति जाति की ओर खिंचती है। जो जैसा है उसको वैसी ही सङ्गत भाती है। यहाँ पुरुष स्त्री से और स्त्री पुरुष से भिन्न हैं परन्तु दोनों एक दूसरे की ओर खिंचे रहते हैं।

शिव—यहाँ केवल तुम्हारी समझ का फेर है। यहाँ वह नियम काम नहीं करता किन्तु यहां कमी का सिद्धान्त काम करता है, जैसे अस्वस्थ होने पर जब कभी शरीर में किसी तत्व की कमी आ जाती है तब मन बार बार उसी वस्तु को खाना चाहता है। तुम जानते होगे कि बहुधा रोगी खटाई दही इत्यादि खाने के लिये तड़पा करते हैं इसी प्रकार पुरुष में स्त्री

की कमी उसको तड़पा देती है और स्त्री के देखते ही उसका चित्त उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। स्त्री स्त्री पर मोहित नहीं होती क्योंकि उसमें यदि कमी है तो स्त्री पने की नहीं किन्तु पुरुष पने की कमी है। गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी है:—

"मोहे न नारि के रूपा।
पन्नगारि यह नीति अनूपा।."

जिज्ञासु—इसकी आप कुछ और व्याख्या कर दीजिये तो काम बने।

शिव—एक दूसरे की कमी के कारण, एक दूसरे की कमी के पूरा करने के विचार से पुरुष स्त्री के ध्यान को पकाता रहता है और स्त्री पुरुष के ध्यान को दृढ़ करती रहती है। इसलिये जब वह मिलते हैं बड़े ही प्रेम और प्यार के साथ मिलते हैं। बार-बार मिलने के इच्छुक रहते हैं। यदि मिलाप की नौबत आती है तो दोनों में नये नये उमङ्ग, नई-नई तरंगें और नये-नये भाव उत्पन्न होकर संसार में आनन्द और सौन्दर्य की लीला दिखाते रहते हैं। यदि मिलाप की नौबत नहीं आती तो दोनों में मलीनता, रोग और नाना प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं। दोनों यदि नियमानुसार मिलें तो स्त्री और पुरुष दोनों ही विचारशील, और प्रतिभाशाली हो जायें और यदि ऐसा न हो तो इसके विरुद्ध परिणाम होता है। इन दोनों के मिलाप में जो आनन्द है वह अकथनीय है। यदि विचार किया जाये तो जो कुछ लोक परलोक की लीलायें हैं वह केवल स्त्री पुरुष के उचित व्यवहार और परस्पर संयोग पर निर्भर हैं। इस स्त्री पुरुष के जगत् में इस नियम का पालन होना स्वाभाविक और प्राकृतिक है। कोई मनुष्य चाहे कैसा ही क्यों न हो इसकी रोक थाम नहीं कर सकता। जैसे संसारी

कार बार बिना स्त्री पुरुष के मिलाप के नहीं चलते. वैसे ही धार्मिक कार्य्य भी नहीं हो सकते क्योंकि लोक परलोक एक जैसे हैं। इनमें केवल नाम का भेद है और कोई भेद नहीं है। यही कारण है कि ऋषियों के समय में जब वैदिक धर्म्म अपनी उन्नति के शिखर पर था, जहाँ स्त्री पुरुष घर के काम में सम्मिलित रहा करते थे, यज्ञ करते समय भी इस बात की बड़ी आवश्यकता थी कि चित् डांवाडोल न हो, और सबसे अधिक चित्त डाँवाडोल होने का कारण स्त्री ही होती है, इसलिये यह बाईं ओर बिठा दी जाती थी जिसमें आनन्द के साथ, प्रेम के साथ और एकाग्रता के साथ यज्ञ पूर्ण हो और धार्मिक अर्थात् स्वर्गीय आनन्द का प्रवाह फूट फूट कर बहता रहे। यह हमने और व्याख्या कर दी। यह इस लोक में भी होता था और परलोक में भी।

जिज्ञासू—महाराज! शास्त्रों की आज्ञा तो यह है कि मनुष्य वीर्य्य की रक्षा करे, ब्रह्मचर्य का सेवन करे और स्त्री के ध्यान तक को मन में न आने दे परन्तु आप इस शिक्षा के बाहर चले जा रहे हैं।

शिव—यह सच है परन्तु इस वीर्य्य रक्षा के लिये समय नियत था और सदैव नियम बद्ध होकर सदाचार के साथ जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया जाता था। वीर्य्य रक्षा पूर्ण रीति से या तो ब्रह्मचर्य के दिनों में की जा सकती है, जो जीवन का प्रथम भाग है, क्योंकि इस समय में मन और बुद्धि इस विशेष कमी के अनुभव करने के योग्य नहीं होते या वानप्रस्थी के समय में जो जीवन का अन्तिम भाग है; क्योंकि इसमें भी उस अनुभव की न्यूनता होने लगती है। कारण यह है कि विद्या और व्यवहार सम्बधी अनुभव बढ़-

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

कर मनुष्य को समझाने लगते हैं कि जो कुछ है वह मन ही में है। मन की पूर्ण अवस्था में स्त्री पुरुष सब अपने अन्दर ही हैं। इस अवस्था में भी स्त्री साथ रहती थी। स्त्री की सब से अधिक आवश्यकता गृहस्थी की अवस्था में होती है, जिस समय मनुष्य अपनी त्रुटियों की पूर्ति के लिये बाध्य होता है। संन्यास में त्याग का अभ्यास करते करते स्त्री पुरुष के विचार को एक दम मन से भुला दिया जाता है और केवल चौथी अवस्था का ध्यान बँधाया जाता है या बाँधा जाता है। यह वह आदर्श है जहां पुरुष और प्रकृति मिलकर मटर के दो दानों के समान मन में एक हो रहते हैं और शिव को शक्ति से अलग नहीं किया जा सकता। जब तक इस द्वैत के विचार को मन में मिलाकर एक और अद्वैत नहीं बना लिया जाता तब तक चौथी अवस्था किसी अन्य दशा में नहीं प्राप्त हो सकती। इसलिये संतों ने समझा बुझाकर अपने मत के अधिकारियों और अनुयाइयों को **सुरत शब्द योग** के साधन की सहज युक्ति बतला दी जिसमें अभ्यासी स्त्री पुरुष के विचार को मेंट कर उस परम धाम को प्राप्त कर लें, जहां न पुरुष है न प्रकृति, न शिव है न शक्ति इत्यादि इत्यादि।

यह तुम्हारे इस प्रश्न का संक्षेप उत्तर है।

जिज्ञासु—आप ने बड़ी दया की और यह भेद बता दिया इसके सिलसिले में संत मत का भी सिद्धान्त और **सुरत शब्द योग** की कमाई का सारांश समझ में आ गया परन्तु एक प्रश्न और है। क्या स्वर्ग में भी विवाह आदि हुआ करते हैं?

शिव—तुम भी अच्छे मनुष्य हो! स्वर्ग को हमने स्वप्न अवस्था की लीला बता दिया। स्वर्ग और नर्क दोनों कल्पित

और मानसिक हैं। इसलिये जैसा जिसका विचार होगा वैसा वह फुरेगा। जो विवाह करना चाहेगा उसका विवाह होगा; जो न करना चाहेगा उसका न होगा। तुम क्यों माया और काल के विषय में ऐसे निरर्थक प्रश्न करते हो? तुम्हें उचित है कि अभ्यास में लगो और अपना काम बनाओ।

शब्द

चल री सुरत अब गुरु के देश।
जहाँ न काया कर्म्म कलेश ॥१॥
तन मन इन्द्री यह परदेस।
छोड़ो भेष भवन का लेस ॥२॥
सुनो कान से गौर गनेश।
सुरत शब्द ले धाओ शेष ॥३॥
ब्रह्मा विष्णु न गौर गनेश।
जहाँ न नारद सारद शेष ॥४॥
संत सुरत जहाँ किया प्रवेश।
सत् गुरु दया मिला वह देश ॥५॥
काल कर्म्म की गई न पेश।
तोड़े दाँत और काटे नेश ॥६॥
सत् गुरु को अब करो अदेश।
राधास्वामी पूरे धनी धनेश ॥७॥

(सार बचन राधास्वामी)

कहो और कुछ प्रश्न हैं कि बस?

जिज्ञासु—बस महाराज! बस! अब अधिक कष्ट न दूंगा। बात समझ में आ गई। वास्तव में अभ्यास करने की बड़ी आवश्यकता है।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

तीसरी बैठक

शिव जी के अपने मन के प्रश्नोत्तर

[तीन बजे रात को नींद खुली। मन में कई प्रकार के प्रश्नोत्तर उठने लगे। वह यहाँ औरों के लाभार्थ ज्यों के त्यों लिख दिये जाते हैं। आशा है वह रोचक, मनोरंजक और लाभदायक होंगे।]

हम—बहुत कुछ लिख चुके। वर्षों से वही रगड़ा झगड़ा रहा है। अब इस लेखनी की घिस घिस को समेटना चाहिये। अब क्यों अधिक समय इस काम को दिया जाये?

मन—फिर करोगे क्या।

हम—कहीं एकान्त में बैठ कर रात दिन भजन और निदिध्यासन में रहेंगे।

मन—यह विचार ही विचार है। काम किया तो क्या! न किया तो क्या! इस भ्रम को मन से दूर कर देना चाहिये। यह ध्यान भी न रहे कि काम करते हैं या नहीं करते। जब तक कर्म्म का संस्कार है किसी न किसी प्रकार का व्यवहार तो करना ही पड़ेगा। जब तक जीना तब तक सीना। जो संस्कार मन में भरा है वह जब तक दूर न हो लेगा वह बराबर फुरता ही रहेगा। इससे छुटकारा कब है? जब तक समस्त कर्म्म दग्ध न हो लेंगे, जिस बात को तुम चाहते हो वह प्राप्त न होगी। इसमें बुराई क्या है? काम बुरा तो है नहीं, अच्छा है। इससे बहुत से लोगों को लाभ भी पहुंच रहा है और उनमें भक्ति भाव और ज्ञान ध्यान की समझ भी आती जा रही है। तुम्हारा यह काम निष्फल तो नहीं है।

हम—परन्तु वह सुख जो एकान्त सेवन से प्राप्त होता है

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

वह कोई और ही वस्तु है।

मन—शिव जी! तुम कैसी बातें कर रहे हो! एकान्त सेवन और संसारी व्यवहार सब मन के भ्रम हैं। इनके मेंटने ही में भलाई है। एक रहेगा तो दूसरा भी रहेगा। एक के साथ दो का झगड़ा सदैव लगा रहेगा। इन पर अधिकार पाओ और इसी काम काज में ऐसी अवस्था उत्पन्न कर लो जो एकान्त से भी बढ़ कर है और तुम इसको समझ भी रहे हो। कोई दूसरा मनुष्य ऐसी बातें करता तो उसको समझाया जाता। कहाँ का एकान्त और कहाँ का झमेला! यह उन लोगों के विचार की बातें हैं जिनका मन उलझा हुआ है और जिनके लिये साधन आवश्यक है। तुम्हारा मन तो बहुत कुछ **सत् पुरुष हुजूर दाता दयाल** की दया से सुलझ गया है। छोड़ो इस भ्रम को।

हम—परन्तु इसमें हर्ज ही क्या है कि कुछ महीनों के लिये चुपके बैठे रहें। इसका भी तो आनन्द लें।

मन—क्या यह आनन्द तुम में नहीं है? जब तुम आप आनन्द रूप हो तो फिर एकान्त में कौन सा आनन्द मिलेगा। यह भ्रम और धोका है। रहा अनुभव करना, इसका ज्ञान भी तुम्हें हो चुका है। एक समय तुम सतेस गढ़ में (विन्ध्याचल पहाड़ पर) अकेले रहते थे। केवल एक दो अमरूद और पाव भर दूध पर जीवन व्यतीत करते थे। पहाड़ की चोटी पर दुर्गा देवी के मन्दिर में तुमको राजा कनतित के सज़ावल ने जगह बता दी थी। रात को वहाँ रीछ और चीते ठीक मन्दिर के सामने पानी पीने आते थे परन्तु क्या वह दशा सच्चे आनन्द की थी? दूसरी बार तुम सूरत में गये और उत्तम-

दास नरोत्तमदास मेम्बर थियासोफिकल सोसाइटी ने तुम्हारे रहने के लिये श्मशान भूमि के निकट गुफा जैसी जगह खुदवा कर बनवा दी थी। कुछ दिनों तुमने वहाँ तपस्या की। अब क्या चाहते हो? एकान्त सेवन का भी ज्ञान हो गया। फिर बार बार वही विचार! यहाँ तो तुम अब भी कभी कभी महीनों चुपचाप पड़े रहते हो। न किसी को पत्र लिखते हो न उत्तर देते हो। यह भी तो एकान्त सेवन ही है। यह विचार केवल भ्रम है। इसे छोड़ो और शीघ्र छोड़ो।

हम—परन्तु एकान्त में विचार बहुत ही दृढ़ होता है।

मन—किस का?

हम—जो कोई एकान्त में रहे उसका।

मन—नहीं, जो संसार के झमेलों से घबराते हैं उनकी घबराहट की यह औषधि है। देखो हुजूर महाराज सतगुरु ने तुम्हारी प्रार्थना सुन ली। तुम अब एक दम मुक्त हो गये। बन्धन कट गये। घर बार तक नहीं रहा। स्त्री मर गई। लड़कियों का विवाह हो गया। वह अपने घर चली गईं। अब संसारी बन्धनों से तो तुम्हें छुटकारा मिल गया। संसार में भी बहुत घूमे फिरे। अन्य देशों में भी हो आये। अब क्यों ऐसी इच्छा करते हो? इस विचार को मन से दूर करो। यह कुछ भी नहीं है—

संत सयान वही जग में, घर ही जिन योग कमाना हो।
वेद पढ़त पण्डित भूले, जो ज्ञान को करत गुमाना हो।"

तुम जिस अवस्था में हो वह बहुत ही अच्छी अवस्था है।

हम—एकान्त में नये नये विचार उत्पन्न होते हैं और नई नई बातें सूझती हैं।

मन—क्या बात कहते हो ? जब **हुजूर** के चरणों में मन को लगा देते हो आप ही आप नये नये विचार तुमको मिलते हैं। तुमने **पंजाब** को **हुजूर** की आज्ञानुसार चिताया। न गुरु बने न आचार्य्य ! न अहं भाव के साथ किसी बात का अहङ्कार ! तुम्हारे प्रचार और उर्दू मासिक पत्रों ने हजारों को उच्च भाव वाला बना दिया। **साधू**❀ (मासिक पत्र) ने काम किया। **सरस्वती भण्डार**❀ ने उत्तमोत्तम पुस्तकों के सिलसिले में ज्ञान ध्यान की बातें सिखाईं। **संत सन्देश**❀ ने संत मत की फ़िलोसफी और योग की व्याख्या की। **विज्ञानी**❀ ने विज्ञान के गुप्त रहस्य को खोल खोल कर रख दिया। **संत समागम**❀ ने सत्सङ्ग की नीव डाली। अब **अवधूत**❀ अपनी बारी पर मस्ती का राग अलाप कर लोगों को मस्त और निर्द्वन्द बनाने का यत्न कर रहा है। हिन्दी भाषा में अध्यात्मिक विषयों पर प्रकाश डालने वाले पत्र का अभाव था। अब दो वर्ष से **संत**❀ उस कमी को भी पूरी कर रहा है। अपनी कमली को दरिया की लहर से किसी ने बचा भी लिया तो क्या हुआ ! बात तो तब है जब और डूबने वालों को भी डूबने से बचा लिया जाय। जो तुम्हारे लेख को पढ़कर हुज़ूर के चरणो में आते हैं, आयेंगे और आचुके हैं, क्या उनकी आत्मिक सहानुभूति कुछ भी नहीं है ?

हम—जो कुछ हम को करना था कर चुके। संसार का काम किस ने पूरा किया है ?

❀ मासिक पत्रों के नाम हैं।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

मन—फिर वही बात ! सुनो तुम को तो लोक और परलोक दोनों से ऊपर आना है और यही आदर्श है। भ्रम में व्यर्थ क्यों पड़ते हो ? **पंजाब** में तुम को दस गुरुओं का खजाना मिल रहा है। उनके विचार जो आकाश मण्डल में गूंज रहे हैं वह तुमको अधिकारी पाकर फ़र फ़र तुम्हारे मस्तिष्क में समा जाते हैं। तुम उनका चित्र अपनी लेखनी से खींच कर औरों को दिखाते और देते रहते हो। यह अच्छा या एकान्त सेवन अच्छा ?

हम--यह सब सच है फिर भी एकान्त एकान्त ही है।

मन—नहीं, एकान्त भी भ्रान्त है। यह भी केवल कहने के लिये है जो हो रहा है अच्छा ही हो रहा है। एकान्त में होते तो **परमसंत कबीर साहिब** के **बीजक** की टीका कौन लिखता ? अब तक तो किसी ने भी यह काम नहीं किया था। सैकड़ों वर्ष से लोगों को इसकी आवश्यकता और लालसा थी। तुमने **पन्थ सन्देश** लिखकर संत मत की फ़िलोसफी को पूर्ण रूप से वर्णन किया। अब अधिकारी इसे पढ़ कर आप सोच समझ सकते हैं कि वह मानने योग्य है या नहीं। तुमने नये ढङ्ग पर वेदान्त के गूढ़ रहस्यों को समझाया बुझाया। इस लिखने पढ़ने के काम में तुम्हारा मन उभरता और उन्नति करता जा रहा है। जब तुम जैसे थे वैसा विषय लेखनी से निकलता था और पढ़ने वाले के हृदयों पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता था क्योंकि तुम केवल विद्वान ही नहीं किन्तु थोड़े बहुत अभ्यासी भी तो थे। चले चलो इसी राह पर। न इधर देखो न उधर। हुज़ूर का काम हो रहा है। तुमको क्या ? अब न तुमको धन द्रव्य की

इच्छा है न मान प्रतिष्ठा की लालसा है। हुजूर ने निर्धन से धनवान बना दिया और फिर तुमने उस धन को आप ही खर्च करके साधुओं जैसी दशा बना ली। इसका भी झमेला गया। यह बहुत अच्छी बात हुई। अन्य लोग तो धड़ाबन्दी में और गुरुआई चेलाई के झगड़ों में पड़ गये। तुमने अच्छा किया। न किसी से लेना न किसी को देना। सब के हो और किसी के भी नहीं। तुम बहुत अच्छा करते हो कि इनको भी हुजूर के काम करने वाले और हुजूर की शिक्षा के प्रचार करने वाले समझ कर सबको प्रेम की दृष्टि से देखते और सबका आदर सम्मान करते हो। यह जीवन बहुत अच्छा है।

हम—क्या हम एकान्त सेवन के विचार को एक दम छोड़ दें?

मन—निस्संदेह! उसमें धरा क्या है? कुछ भी नहीं।

> दुख सुख एक समान कर, हर्ष शोक नहिं व्याप।
> परोपकार निष्कामना, उपजे हर्ष न ताप॥

सेवा करो। हुजूर की सेवा उस समय तक बराबर करते रहो जब तक शरीर का अध्यास और उसकी समझ बूझ है। बाणी है:—

> सेवक सेवा में रहै, सेवक कहिये सोय।
> कहैं कबीर सेवा बिना, सेवक कभी न होय॥१॥
> सेवक सेवा में रहै, अन्त कहूँ नहिं जाय।
> दुख सुख सिर ऊपर सहै, कह कबीर समझाय॥२॥
> सतगुरु शब्द उलंघ कर, जो सेवक कहिं जाय।
> जहाँ जाये तहाँ काल है, कह कबीर समझाय॥३॥

सेवक मुखा कहावई, सेवा में दृढ़ नाहिं।
कहैं कबीर सो सेवका, लख चौरासी जाँहि ॥४॥
सेवक सेवा में रहै, सेव करे दिन रात।
कहैं कबीर कुसेवका, सन्मुख ना ठहरात ॥५॥
कबीर निर्बन्धन बँध रहा, बँध निर्बन्धन होय।
कर्म्म करै कर्ता नहीं, दास कहावै सोय ॥६॥

हम—तो फिर क्या करें ? इसी काम में बराबर लगे रहें ?

मन—अवश्य और निस्संदेह ! जो परमार्थ का धन हुज़ूर ने अपनी दया से प्रदान किया है तुम भी उदारता के साथ खुले हाथों औरों को इसी प्रकार देते चलो। तुम कुछ अपना तो नहीं दे रहे हो। जो कुछ है वह हुज़ूर दाता दयाल का है। वह सबको दो। जो मांगे उसे निराश न करो।

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागेगा मोर॥

हम—तो फिर क्या करें ? इसी काम में बराबर लगे रहें ?

मन—इसी में तुम्हारी भलाई है। यदि गुरू की सेवा इस प्रकार बराबर होती रही तो तुम प्रसन्न रहोगे और कभी किसी बात की कमी न होगी।

गुरु समरथ सिर पर खड़े, काहु कमी तोहि दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करैं, मुक्ति न छांड़े पास ॥१॥
दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अन्त तिहु काल।
पलक एक में प्रगट होय, छिन में करूँ निहाल ॥२॥

हम—बहुत अच्छा ! तो हम हुजूर के दिये हुये धन को देते रहेंगे।

मन—सावधान ! यह शब्द अब मुख से न निकलने पायें। इन से तुम्हारे सूक्ष्म अहङ्कार का पता चलता है। इसका क्या अर्थ "कि हम धन देते रहेंगे ?" यह अभ्यास का अनुचित शब्द है। ऐसे अहङ्कार के शब्द जिह्वा से न उच्चारण हों !

गुरु से ज्ञान जो लीजिये, सीस दीजिये दान।
बहुतक भोंदू[1] बह गये, राख जीव अभिमान ॥१॥
गुरु समान दाता नहीं, जाचक[2] दास समान।
चार लोक की सम्पदा, सो गुरु दीनी दान ॥२॥
सत्य नाम के पटतरे[3], देने को कछु नाँहँ।
कहाँ लग गुरु सन्तोषिये ! हवस रही मन माँहँ ॥३॥
मन दिया जिन सब दिया, मन के सङ्ग शरीर।
अब देने को क्या रहा ? यों कथ कहैं कबीर ॥४॥
तन मन दिया तो भल किया, सर का जासी भार।
जो कबहूं कह "मैं दिया", तो बहुत सहेगा मार ॥५॥
तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय।
कहैं कबीर ता दास सों, कैसे मन पतियाय ॥६॥
तन मन दिया आपना, निज मन ताके सङ्ग।
कहैं कबीर निर्भय भया, सुन सत्गुरु पर सङ्ग ॥७॥
निज मन तो नीचा किया, चरन कमल के ठौर।
कहैं कबीर गुरुदेव बिन, नजर न आवै और ॥८॥
गुरु माथे से ऊतरे, शब्द बिहूना होय।
ताको काल घसीटिहै, रोक न सक्के कोय ॥९॥

नोटः—१. मूर्ख। २. भिखारी ३. बदले में

गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माँहि।
कहँ कबीर ता दास को, तीन लोक भय नाँहि ॥१०॥
चार खान में भर्मता, कबहुं न लगता पार।
सो तो फेरा मिट गया, सत्गुरु के उपकार ॥११॥

हम—बहुत अच्छा ! लोग कहते हैं मन बहकता है परन्तु तुम तो हमको उपदेश दे रहे हो।

मन—यह मूर्खों की बात चीत है। मन को जो अपना नहीं बना लेते वह इस प्रकार की बातें करते हैं। यदि मन भ्रम में डालता और बहकाता है तो फिर राह पर कौन लाता है ? मन को गुरु के चरणों के तले लाकर डाल दो और यह मन कभी उत्पात न मचायेगा।

गूँगा हूआ बावरा, बहिरा हूआ कान।
पावन ते पँगुला हुआ, सत् गुर मारा बान॥

जो फ़कीर गुरू या साधू बनते हैं वह गुरुमत नहीं हैं। लोग बनते हैं इसलिये बिगड़ा करते हैं। तुम न बनो फिर कभी भी न बिगड़ोगे ! जो सारे बने हुये लोग गुरुआई चेलाई कर रहे हैं उनके लिये यह बाणी है:—

पूरा सत्गुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग यती का पहिन कर, घर घर माँगी भीख॥

हम—वाह मनुआ ! वाह ! क्या कहना है। आज प्रातः-काल तुमने कैसी अच्छी चितावनी दी है !

मन—अजी ! मैं तो ऐसा ही समझाता रहता हूँ परन्तु मेरी सुनता कौन है ! निगुरे व्यर्थ ही मुझे दोष देते हैं और रात दिन कहते फिरते हैं, "मन को मारो, मन को मारो।" भला मेरे मारने से इनको मिलेगा क्या ? इनको चाहिये कि अपने साथ मुझको भी गुरु के चरणों में डाल दें 'फिर देखिये

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

बहार कि कैसी बहार हो'! सुनो! इसी समय एक भजन याद आ गया। उसे आकाश वाणी समझो।

शब्द

मन का झगड़ा मेटो साधो! मन का झगड़ा मेटो (टेक)
माया ब्रह्म जीव अविनाशी, इनका ठाठ लपेटो। साधो!
बन में गये तो मन से अनबन, घर उत्पात झपेटी। साधो!
झूठी माया झूठी काया, झूठ सुता तिय बेटी। साधो!
मन को सोधो मन पर बोधो, मन की गुफा में लेटो। साधो!
जब लग मन में संशय दुविधा, सत् से होय न भेटो। साधो!
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, मन करो अपनो हेटो।
साधो!

तुम औरों के लिये लिखते पढ़ते हो। मैं तुमको यह सिखावन देता हूँ कि, "मन को न मारो किन्तु मन को अपना बनाकर डाल दो हुजूर के चरणों पर और एकान्त आदि का विचार मन से दूर कर दो।"

हम इस वाणी को सुन कर उठे, शौचादि से निवृत होकर नहा धो कर इस वाणी विलास को झटपट लिख लिया। जो पढ़ेंगे उनका भला होगा। हुजूर दाता दयाल सब का कल्याण करें।

चौथी बैठक

अनावश्यक प्रश्नों के आवश्यक उत्तर

जिज्ञासु—लोग बहुधा 'कुतुब' 'अबदाल,' 'वली,' 'नबी' शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं। इनका वास्तव में अर्थ क्या

है और इनके प्रयोग से लाभ क्या है ?

शिव—यह शब्द वास्तव में मुसलमान सूफ़ियों (संत मत के अनुयाइयों) की मजलिस (सत्संग) में अधिकता के साथ सुने जाते हैं और इनकी समझ भी उन्हीं को होती है क्योंकि प्रत्येक समुदाय की परिभाषायें अलग-अलग होती हैं, परन्तु प्रश्न किया गया है इसलिये अपनी समझ के अनुसार कुछ न कुछ उत्तर देना ही पड़ता है। सुनो !

सूफ़ियों में ".क़ुतुब" उस फ़क़ीर कामिल (संत सत् गुरु) को कहते हैं जो अपनी जगह से नहीं हटता और अपने सत्-सङ्ग के स्थान के अतिरिक्त दूसरी जगह नहीं जाता। जिसको उसके दर्शन या बचनों से लाभ उठाना होता है वह चल कर उसके पास आते हैं और सत्सङ्ग करते हैं। हमारे यहाँ ".क़ुतुब्" को ध्रुव तारा बोलते हैं और उसे गौरव की दृष्टि से देखते हैं। ध्रुव तारा अपनी जगह पर रहता है और सप्तर्षि अर्थात् सात मुख्य तारों में इसकी इसीलिये बहुत बड़ी मुख्यता और महिमा है। संतों में भी जो बहुत बड़े आत्म शिक्षक हुये हैं वह भी अपने स्थान को छोड़ कर दूसरी जगह नहीं गये।

"अब्दाल" उन तारों को कहते हैं जो अपनी जगह बदला करते हैं और चक्कर में रहते हैं। फ़क़ीरों का सूफ़ियों में चक्कर लगा लगा कर उपदेश देने वालों को "अब्दाल" कहते हैं। यह ".क़ुतुब्" से बहुत छोटे दर्जे के लोग हैं और यह इतने पूर्ण नहीं समझे जाते। एक जगह ठहरना इनके लिये महा कठिन है क्योंकि मन की चञ्चलता के कारण उन्होंने यह काम अपने सर पर ले रक्खा है। यदि मन निश्चल हो जाय तो यह भी ".क़ुतुब्" के समान एक जगह ठहर कर आत्मिक आनन्द आप भी लें और अपने शब्द और प्रकाश से दूसरों को भी अपने ही सत्सङ्ग में लाभ पहुंचायें। हमारे यहाँ यह "साधु"

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

हैं और इनका दर्जा साधुओं का है जिनकी साधन अवस्था अब तक समाप्त नहीं हुई है। इनसे लोगों को लाभ पहुंचता है और यह आप अपना काम बनाते हुये दूसरों का काम भी बनाते रहते हैं। जिस किसी को एक स्थानी अर्थात् स्थान का दृढ़ देखो उसे "क़ुतुब्" समझो और जिसको स्थान बदलते हुये पाओ उसको "साधु" और "अब्दाल" जानो। यह हमारी समझ में आता है। "क़ुतुब्" और "अब्दाल" दोनों के विषय में यह प्रसिद्ध है कि कभी यह गुप्त रहते हैं और कभी प्रकट।

जिज्ञासु—परन्तु हमारे यहाँ क्यों इन परिभाषाओं का प्रयोग नहीं होता ?

शिव—इसकी क्या आवश्यकता है कि यही शब्द बोले जाँय ? क्या "संत" और "साधु" के शब्द इनके यथार्थ भाव को प्रकट नहीं करते ? हाँ, उनसे भी वह आशय कुछ अंशों में निकलता है। व्यर्थ ही किसी परिभाषा की उलझन में पड़ना निरर्थक है।। इससे कोई लाभ नहीं होता।

जिज्ञासु—"वली" और "नबी" में क्या अन्तर है ?

शिव—ऐसा प्रश्न तो केवल मुसलमान सूफ़ियों से करना चाहिये। "वली" कहते हैं 'संत' को और "नबी" कहते हैं 'अवतार' को। हमारे यहां 'संत' और 'अवतार' का जो अर्थ समझा जाता है उसी अर्थ में मुसलमान सूफी "वली" और "नबी" के शब्दों का प्रयोग करते हैं। "वली" साक्षात् दया के रूप होते हैं। वह लोगों के अवगुण की ओर दृष्टि नहीं करते किन्तु दयालु होते हैं। "नबी" शरअ (धर्म्म शास्त्र) की राह पर चलने वाले होते हैं और दबाव के साथ शरीअत (कर्म्म

काण्ड) की प्रथा को चलाते हैं। "वली" न आप इतने शरअ (कर्म्म काण्ड) के बन्धन में रहते हैं न औरों को उसके बन्धन में फँसे रहने की शिक्षा देते हैं। "नबी" और "रसूल" का व्यवहार इसके विरुद्ध है। "वली" का स्वभाव दया, क्षमा और आत्म शिक्षा है। "नबी" के एक हाथ में तलवार और दूसरे में किताब (धर्म्म पुस्तक) होती है। तुम देखो यह बात हमारे यहाँ भी है या नहीं ? "संत" ज्ञान और राजयोग की शिक्षा देते हैं और जो लोग उनको दुख और कष्ट भी देते हैं वह उनके अपराधों को दया के साथ क्षमा करते हैं। "अवतार" मर्य्यादा के रखने वाले होते हैं इसलिये वह बहुधा नीति के अनुसार दण्ड भी देते हैं। "अवतार" मर्य्यादा पुरषोत्तम होते हैं और "संत" दयालु और कृपालु कहलाते हैं।

जिज्ञासु—आप विधि मिलाना भली भांति जानते हैं। दोनों धर्म्मों की परिभाषा की व्याख्या तो कर दी गई परन्तु हर जगह अवतारों ने दबाव के साथ कर्म्मकाण्ड का काम ही तो नहीं सिखाया। इसमें आपकी भूल है।

शिव—तब क्या सिखाया ?

जिज्ञासु—ज्ञान भी सिखाया है।

शिव—जैसे ?

जिज्ञासु—जैसे हमारे नवें अवतार बुद्ध भगवान ने केवल ज्ञान की और शुद्ध ज्ञान की शिक्षा दी है और ईश्वर तक का खण्डन किया है। वह बड़े दयालु और कृपालु थे। वह औरों के सदृश तो मार धाड़ करने वाले नहीं थे।

शिव—यह सच है परन्तु यहाँ बुद्धदेव ने भी विशेष प्रकार की मर्य्यादा की शिक्षा दी है। तुम उनकी शिक्षा और

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

उनके सिद्धान्त को नहीं जानते, इसलिये ऐसा समझ रहे हो। बुद्ध ने कहीं भी ईश्वर का खण्डन नहीं किया, न नास्तिकपने की शिक्षा दी है। उन्होंने तो केवल कर्म्म, निष्काम-कर्म्म, शुद्ध और पवित्र कर्म्म करने की शिक्षा दी है और उसी को ज्ञान के प्राप्त करने का मुख्य साधन बतलाया है।

जिज्ञासु—बुद्ध ने मर्य्यादा को तो ज्यों का त्यों रहने दिया। यह सच है अर्थात् सच होगा परन्तु और अवतारों के समान उनके काम नहीं हुये हैं।

शिव—जैसे ?

जिज्ञासु—जैसे कड़ाई न करना, दबाव न डालना किन्तु प्रेम भाव से उपदेश देना।

शिव—अवतारों के लिये यह एक दम आवश्यक तो नहीं है कि वह बलात्कार काम किया करें। हाँ, उनको कभी कभी ऐसा करना पड़ा है। जिस समय जिस प्रकार की मर्य्यादा स्थापित रखने अर्थात् अपने जीवन व्यवहार को दिखाकर मर्य्यादा चलाने की आवश्यकता हुई, उन्होंने उसी प्रकार बलात्कार काम किया है और एक के काम कभी दूसरे से नहीं मिलते।

जिज्ञासु—जैसे ?

शिव—जैसे बामन ने भिक्षा माँगी, परशुराम ने क्षत्रियों का नाश किया, श्री रामचन्द्र जी ने लङ्का पर सेना के साथ चढ़ाई की और दैत्य रावण को मार दिया। कृष्ण ने अकेले कंस को मारा। बुद्ध ने साधुओं का भेष धारण किया। इन

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

सबके ढङ्ग भिन्न भिन्न थे परन्तु सन्तों के ढङ्ग और सिद्धान्त में भिन्नता नहीं होती। वह विशेषता और अधिकता के साथ भक्ति भाव ही का प्रचार करते हैं।

जिज्ञासु—अवतारों के काम में भिन्नता और संतों के व्यवहार में एकता होने का कारण क्या है।

शिव—अवतारों का मन्तव्य प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग के प्रबन्ध को ठीक रखना है जिसमें प्राकृतिक नियम में त्रुटि न आने पाये। जो लोग इस नियम का उलङ्घन करते हैं उनको राह पर किसी न किसी प्रकार लगाना या यदि वह सुधार होने की अवस्था से बाहर निकल गये हैं तो उन्हें नष्ट कर देना है। "संत" या "वली" इसके विरुद्ध केवल निवृत्ति मार्ग का उपदेश देते हैं। इसलिये उनके काम में एकता है।

जिज्ञासु—परन्तु बुद्ध भगवान ने भी तो केवल निवृत्ति मार्ग और ज्ञान मार्ग की शिक्षा दी है।

शिव—फिर हुआ क्या?

जिज्ञासु—फिर वह भी 'संत' हैं। वह 'अवतार' नहीं हैं और वह प्रवृत्ति के विरुद्ध हैं।

शिव—इसमें तुम्हारी थोड़ी सी भूल है। बुद्ध ने प्रवृत्ति के विरुद्ध कभी कुछ नहीं कहा है किन्तु सोसाइटी की सामाजिक अवस्था का सुधार किया है। यह मर्य्यादा है और साथ ही निवृत्ति का मार्ग भी दिखाया है। यह कहाँ से तुमने सुना कि वह सामाजिक धर्म्म के विरुद्ध थे?

जिज्ञासु—उन्होंने वर्णाश्रम के विरुद्ध शिक्षा दी। ईश्वर का खण्डन किया। वेदों के महत्व को धक्का पहुंचाया।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

शिव—इसमें तुम्हारी भूल है और तुम ने बुद्ध धर्म्म के सिद्धान्त का भली भाँति अवलोकन नहीं किया है इसलिये ऐसा कहते हो। बुद्ध यदि ईश्वर का खण्डन करते होते तो हम हिन्दू उनको ईश्वर का अवतार कब मानते ? न ही बुद्ध ने वर्णाश्रम और वेदों के विरुद्ध प्रचार किया है। यह एक दम भूल है। उन्होंने वेद और वर्णाश्रम के प्रश्न तक को कभी नहीं उठाया और ईश्वर या ब्रह्म के विषय को तो एक दम छोड़ ही दिया है। केवल शुभकर्म्म, शुद्ध जीवन और विचार के साथ काम करने का उपदेश देते हुये उन्हीं के सिलसिले में निर्वाण पद प्राप्त करने की शिक्षा दी है।

जिज्ञासू—परन्तु उन्होंने ईश्वर के विषय को क्यों छोड़ दिया ?

शिव—वह अकथ अपार विषय है। इसे विशेष गुरुयता देने से भिन्नता के बढ़ जाने का भय था। कोई कहता—"ईश्वर है," कोई कहता—"ईश्वर नहीं है," और व्यर्थ ही वाद-विवाद बढ़ जाता जिसमें पड़ कर परमार्थ की कमाई एक से भी न होती और सब वाचक ज्ञानी हो जाते, जैसा कि आज कल ईश्वर के मानने वालों और ईश्वर के न मानने वालों की दशा है। दोनों एक जैसे हैं और परमार्थ से कोरे हैं। इसके विरुद्ध बुद्ध ने मध्य मार्ग ग्रहण किया। न यह कहा कि "ईश्वर है" और न यह कहा कि "ईश्वर नहीं है", क्योंकि इस कहने और न कहने का कोई प्रयोजन नहीं था। उन्होंने (१) दुख के होने (२) दुख के कारण (३) दुख के मेटने और (४) निर्वाण पद के प्राप्त करने की शिक्षा दी और अष्टाङ्ग योग सिखाया जिसके करने से किसी दिन यह प्रश्न आप बिना

बताये और समझाये हुये समझ में आ जाता है और वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं होती।

जिज्ञासु—बुद्ध ने यह अनुचित शिक्षा दी।

शिव—वह कैसे?

जिज्ञासु—ईश्वर के विचार और ध्यान को लोगों के हृदय-स्थल में ठहने नहीं दिया और वास्तव में सब को नास्तिक बना दिया।

शिव—असत्य! और एक दम असत्य! यदि तुम कहते कि गुप्त रीति से उन्होंने सब को आस्तिक और सच्चा आस्तिक बना दिया तो बहुत ठीक होता।

जिज्ञासु—यह कैसे?

शिव—जैसे बुद्ध भगवान ने शिक्षा दी है कि तुम शुद्धता के विचार को आँखों के सामने रक्खो। क्या ईश्वर शुद्ध नहीं है? बुद्ध भगवान ने बताया है कि तुम बुद्धि को काम में लाते हुये उसी की बतलाई हुई राह पर चलो। क्या ईश्वर बुद्ध नहीं है? बुद्ध भगवान ने सिखाया है कि तुम शुद्ध होकर, मुक्ति पद की प्राप्ति का यत्न करो। क्या ईश्वर मुक्त नहीं है? शुद्ध, बुद्ध, मुक्त यही तो ईश्वर के गुण हैं। लोग इन पर व्यर्थ वाद विवाद करके अपना और दूसरों का समय नष्ट करते हैं। उस समय में बुद्ध के शिष्य इनके आदर्श को आँखों के सामने रखकर शुद्ध, बुद्ध और मुक्त होने का प्रयत्न करते थे। अब तुम्हीं न्याय करो कि यह अच्छे या वह अच्छे! नाम लिया तो क्या? न लिया तो क्या? पतिव्रता स्त्री अपने पति का नाम नहीं लेती परन्तु सबसे अधिक उसकी भक्ति का

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

आनन्द उसी को मिलता है ! दूसरे चिल्ला चिल्लाकर नाम लेते हैं और उसके हृदय में वह जगह नहीं पाते जो उसकी स्त्री को मिलती है। इस प्रकार बुद्ध धर्म्म एक दम व्यवहारिक धर्म था। वाचक ज्ञान का मार्ग नहीं था।

जिज्ञासु—क्या कहना है ? यह बात तो आपने विचित्र बताई। हम एक दम भूले हुये थे।

शिव—तो अब न भूलना। सँभल कर रहना। बुद्ध नास्तिक नहीं हैं। वह ईश्वर के अवतार हैं। ईश्वर का अवतार नास्तिक कैसे होने लगा ? भेद केवल इतना है कि एक मनुष्य बिना समझे बूझे नाम ले ले कर चिल्लाता है और कुछ हाथ नहीं आता और दूसरा मनुष्य गुरु के सङ्केत को समझकर रूप को साक्षात्कार करके उसी का हो रहता है। नाम और रूप का यह जगत् है। किसी को कोई वस्तु नाम लेने से प्राप्त होती है, किसी को रूप के देखने से। रूप का देखना विशेष साक्षात्कार कहलाता है। बुद्ध भगवान के शिष्य नाम लेने के बदले साक्षात्कार करने ही को अच्छा समझते थे। यह भेद है

जिज्ञासु—तो यह बताइये आप किसके पक्षपाती हैं ? नाम के या रूप के ?

शिव—तुम्हारा यह प्रश्न व्यर्थ है। जब तुम "वली", "नबी" के विषय में पूछने आये थे तो मेरे निज विश्वास के प्रश्न को परे उठा रखते तो अच्छा होता, परन्तु तुमने प्रश्न किया है उसका उत्तर कुछ न कुछ देना ही पड़ेगा। हम नाम और रूप दोनों के प्रेमी हैं। हमारे पन्थ में नाम का सुमिरन भजन और रूप का ध्यान दोनों ही हैं। हमारे यहां "शब्द"

और "प्रकाश" दोनों साथ साथ चलते हैं। प्रकाश रूप है और शब्द नाम है। यह इन दोनों की मुख्यता है।

जिज्ञासु—तब तो आप का सिद्धान्त बुद्ध देव के सिद्धान्त से भिन्न ठहरा ?

शिव—यह तुम कहते क्या हो ? हमने यह कब कहा कि हम बुद्ध धर्म्म के अनुयायी हैं ?

जिज्ञासु—जब आप उसका इतना पक्ष करते हैं तो अनुयायी होने में कसर क्या रही ?

शिव—हम केवल न्याय की बात कहते हैं। जो हमको सच प्रतीत होता है उसको न तो हम छुपाना चाहते हैं न उसके विरुद्ध हठ धर्म्मी का भाव आता है।

जिज्ञासु—तो फिर क्या जो बुद्ध धर्म्म के अनुयायी नहीं हैं उनकी मुक्ति न होगी ?

शिव—यह हमने कब कहा ? मुक्ति का अधिकार सब को बराबर है।

जिज्ञासु—मैं तो समझता हूं जो ईश्वर को नहीं मानता या उस पर विशेष ध्यान नहीं देता वह बुरा है।

शिव—हम भी ऐसा ही मानते हैं। तुम सच कह रहे हो।

जिज्ञासु—परन्तु आप तो अभी कह चुके हैं कि बुद्ध भगवान ने जान बूझ कर ईश्वर के विषय पर ध्यान नहीं दिया; न यह कहा कि "ईश्वर" है और न यह कहा कि "ईश्वर" नहीं है।

शिव—हां ! यह तो हमने अवश्य कहा है।

जिज्ञासु—फिर परिणाम क्या हुआ ?

शिव—परिणाम यह हुआ कि बुद्ध भगवान ने प्रेमियों के हाथ में मिठाई देकर कहा कि इसको चखो और यह नहीं बताया और न बताने की आवश्यकता समझी कि संस्कृत में इसको यह और अरबी में यह और फ़ारसी में यह कहते हैं। केवल इतना भेद है और तुम यदि हमारी बात समझ जाते तो फिर वादविवाद न करते।

जिज्ञासु—तो फिर यह बताइये कि बुद्ध धर्म ने किस प्रकार ईश्वर का साक्षात्कार कराया ?

शिव—इसका उत्तर तो हमने दे दिया। अब तुम व्यर्थ उलझते हो। हमारी बातों पर विचार करो और तुम्हें बोध हो जायेगा और यदि तुम्हारा संशय निवारण नहीं होता तो हमने भी कुछ इसका ठेका नहीं ले रक्खा है। अपनी अपनी समझ ! और अपना अपना विचार !

जिज्ञासु—महाराज ! बुरा न मानिये। मैं पूछना कुछ चाहता हूँ परन्तु अपने भाव को उचित शब्दों में प्रकट नहीं कर सकता। आप का उत्तर ठीक है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं परन्तु मैं अपने मन को क्या करूँ ? वह कुछ जानना चाहता है परन्तु स्पष्ट शब्दों में अपने विचार के प्रकट करने में असमर्थ है।

शिव—तो दम ले लो, सोच लो, समझ लो। जल्दी क्यों करते हो ?

जिज्ञासु—बुद्ध भगवान ने ईश्वर की आवश्यकता को कैसे दूर किया क्योंकि चाहे थोड़े से लोग नास्तिक हो जाँय परन्तु बहुत से लोग तो ऐसे नहीं हो सकते ? मनुष्य में

स्वभावतः ही ईश्वर के जानने, बूझने, समझने और सोचने का संस्कार है।

शिव—यह तुम्हारा कहना ही कहना है। मनुष्य के सारे विचार, उसकी शिक्षा देश काल और वस्तु के आधीन हैं। यदि ईश्वर का जानना ही सब कुछ होता तो थोड़े ही से मनुष्य उसके लिये निर्दिष्ट न होते। स्वभाव तो उसको कहते हैं जो सब में साधारणता के साथ हो परन्तु तुम देखते हो कि सभ्य और असभ्य मनुष्य के विचार में कितना भेद होता है। इसलिये हम कैसे मानें की ईश्वर के विषय में सब का एक भाव है? ईश्वर का विषय भी सत् के साक्षात्कार की केवल एक मध्य कड़ी है और इसलिये तुमको भी इस पर व्यर्थ अड़ने की आवश्यकता क्या है? क्या यह कम है कि तुम आप ईश्वर वादी हो? दूसरों पर बलात्कार प्रभाव डालने की क्या आवश्यकता है? बुद्ध के शिष्यों में कड़ोरों ऐसे मिलते हैं जो इधर ध्यान तक नहीं देते। ऐसी दशा में ईश्वर के विषय में सबका एक भाव कैसे हो सकता है?

जिज्ञासु—परन्तु अभी आप ने शुद्ध, बुद्ध, मुक्त का उदाहरण देकर उनको आस्तिक बताया है।

शिव यह सच है। शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, निस्सन्देह स्वाभाविक गुण हैं और यदि तुम बौद्धों के सिद्धान्त को मानते हो तो फिर तुमको किसी और प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं रहती। शुद्ध कहते हैं पवित्र को—हर मनुष्य पवित्र रहने का स्वाभाविक प्रेमी है। बुद्ध कहते हैं ज्ञान को—प्रत्येक मनुष्य संसार में ज्ञानी और बुद्धिमान होने की इच्छा रखता है। मुक्त कहते हैं निर्बन्ध को—प्रत्येक मनुष्य दुख से, मृत्यु से

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

और अप्रिय दशा से बचना चाहता है। इन तीन बातों की प्रबल इच्छा प्रत्येक मनुष्य में स्वाभाविक पाई जाती है। कोई अशुद्ध या अपवित्र नहीं रहना चाहता क्योंकि अपवित्रता में दुख है। जहाँ मिलौनी, द्वैत भाव या वियोग है वहाँ ही अशुद्धता रहेगी। जहाँ एकता, अद्वैत भाव और संयोग या मिलाप है वहीं आनन्द, शान्ति और सुख होंगे। आनन्दित रहने, और आनन्दित होने का विचार मनुष्य में स्वाभाविक है। वह स्वाभाविक आनन्द है और यही आनन्द दूसरे अर्थ में शुद्धता और पवित्रता है। बुद्ध का कथन है, "दुख से बचकर ऐसी अवस्था में आओ जो आनन्द ही आनन्द की अवस्था है।" इसी प्रकार संसार में प्रत्येक मनुष्य मूढ़, मूर्ख और अज्ञानी बनने से बचना चाहता है। अज्ञानता लज्जा की बात है। इसलिये कभी कभी लोग न जानते हुये भी अपने को मूर्ख और अज्ञानी कहने और कहलवाने से झिझकते हैं। बुद्ध का अर्थ है 'ज्ञान'। बुद्ध का कथन है—"अज्ञान से बचकर ज्ञानपद को प्राप्त करो।" यही ज्ञान चित् कहलाता है। यह निस्सन्देह मनुष्य में स्वाभाविक है। मुक्त कहते हैं निर्बन्ध को। स्वभावतः प्रत्येक मनुष्य स्वाभाविक निर्धनता से, मृत्यु से और अप्रिय अवस्था से बचना चाहता है। यह बात उसमें स्वाभाविक है। बुद्ध देव का कथन है, "जहां धन है वहाँ ही निर्धनता भी है। जहाँ आरोग्यता है वहाँ ही रोग भी है। जहाँ सुख है वहाँ ही दुख भी है। यदि एक की इच्छा करोगे तो दूसरी भी उसके साथ रहेगी, क्योंकि उनमें परस्पर सम्बन्ध है। इसलिये उनकी इच्छा को परे हटाओ, उनकी बासना को मेट दो और मुक्त हो जाओ।" यही मुक्त होना सच्चे अर्थ में सत् होना है। सत् ही सच्ची वस्तु है। इसलिये जिसको सच्चिदानन्द कहते हैं

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

उसका भाव तो मनुष्य में अवश्य है परन्तु जिस दृष्टि से तुम ईश्वर का विचार कर रहे हो वह स्वाभाविक नहीं है किन्तु शिक्षा, सङ्गत और देश काल और वस्तु के प्रभाव का परिणाम है। यह अब तुमने अवश्य समझ लिया होगा। इस समझ को लेकर बात चीत करो तब हम उत्तर दें।

जिज्ञासु—जिसको आप सच्चिदानन्द कहते हैं उसी को हम ईश्वर कहते हैं और उसी का भाव हम सब में स्वाभाविक है।

शिव—तब तो तुम भी बुद्ध ठहरे। फिर झगड़ा किस बात का ? सच्चिदानन्द वास्तव में ईश्वर का आदर्श है जिसको लक्ष करके हम सब उस तक पहुंचना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में ईश्वर को अपने से बाहिर न जानकर अपने ही भीतर सत् चित् और आनन्द का प्रकट करना और इस युक्ति से शुद्ध बुद्ध और मुक्त हो जाना बुद्ध धर्म्म की शिक्षा है। शिक्षा में भेद हो और हुआ करे। इससे कोई हानि नहीं होती और ऐसा होना भी चाहिये, परन्तु बिना समझे बूझे किसी बड़े आत्म शिक्षक के विषय में अनुचित शब्द का प्रयोग करना सभ्यता के विरुद्ध है।

जिज्ञासु—सारी सभ्यता की जड़ में ईश्वर की भक्ति है। यदि ईश्वर नहीं है तो फिर सारी सभ्यता व्यर्थ है।

शिव—यह सच है और वह जड़ सच्चिदानन्द ही है। जो मनुष्य सत होना चाहेगा वह किसी को भी जान से न मारेगा। जो आनन्द होना चाहेगा वह किसी को दुख न देगा। जो आप ज्ञानी होना चाहेगा वह किसी को अज्ञानता न सिखायेगा, न वह किसी की आँख में पट्टी बाँध कर उसको मूर्ख और अज्ञानी रखना उचित समझेगा। यह सभ्यता का

सर्वोत्तम सिद्धान्त है और जो सच्चिदानन्द के आदर्श पर चलते हैं वह इस नियम को नहीं तोड़ते:—"अहिंसा परमो धर्म्मः।" वही बुद्ध धर्म्म की शिक्षा है और यदि तुम ईश्वर को सच्चिदानन्द मानते हो और आप भी सच्चिादानन्द होने की लालसा रखते हो तो व्यर्थ ही बुद्ध को निरीश्वर वादी और नास्तिक न कहोगे। सच्चिदानन्द ही एक ऐसा उत्तम आदर्श है जो सच्चे ईश्वर के भाव पूर्ण रूप से अपने अन्दर रखता है।

जिज्ञासू—आपने मुँह बन्द कर दिया और बुरे ढङ्ग से मुँह बन्द कर दिया। मेरा वह प्रश्न ज्यों का त्यों रह गया कि ईश्वर की आवश्यकता को बुद्धदेव ने किस प्रकार दूर किया। यदि सच्चिदानन्द और सत् चित आनन्द का आदर्श ही आपके कथनानुसार ईश्वर है तो बुद्ध भगवान ने उसको पूरा कैसे किया?

शिव—तुम कुछ और भी कहना चाहते हो उसको कह लो, तब मैं उत्तर दूं। यों तो मैंने उत्तर दे दिया है कि पवित्र जीवन, निस्वार्थ जीवन, ज्ञान, विवेक, वैराग और सच्चे तप का जीवन व्यतीत करने ही में बुद्धदेव ने सच्चिदानन्द की प्राप्ति की शिक्षा दी है और उसकी पूरी पूरी पूर्ति का नाम "निर्वाण पद" रक्खा है।

जिज्ञासू—मनुष्य स्वाभाविक रूप से इस बात की इच्छा रखता है कि अपने आदर्श का दर्शन इन आँखों से भी करे अर्थात् वह केवल निर्गुणी न हो किन्तु सगुणी भी हो क्योंकि जब तक हम अपने इष्ट को इन खुली आँखों से नहीं देखते और उसका आदर्श हमारी आँखों के सामने नहीं रहता तब तक हम

किसी प्रकार के जीवन व्यवहार को स्वीकार नहीं करते। यही कारण है कि हम हिन्दुओं में अवतार पूजा की निष्ठा उत्पन्न हो गई है।

शिव—हाँ! यह कहो, अब जाकर तुम ठिकाने आये। सुनो, इस बात में तो **बुद्ध भगवान** से बढ़कर और किसी ने क्या शिक्षा दी होगी! जहाँ वह निर्गुण दृष्टि से निर्वाण पद के प्राप्त होने की आशा दिलाते हैं साथ ही सगुण दृष्टि से अपना आप उदाहरण, अपने रूप का उदाहरण अपने वैराग और जप तप का उदाहरण और आदर्श दिखलाते हुये उपदेश देते हैं कि तुम उनके अनुयायी बनो। जिस प्रकार **बुद्ध** ने पवित्र जीवन व्यतीत करके **बुद्ध** पदवी को प्राप्त किया है तुम भी परिश्रम करके **बुद्ध** हो जाओ क्योंकि प्रत्येक मनुष्य चाहे वह कुछ ही क्यों न हो अपने अन्दर बुद्ध होने का दबा हुआ संस्कार रखता है! बुद्ध धर्म्म में निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार की उपासनायें है। हाँ, यहाँ वह भ्रम नहीं है जो और पन्थों में है। अब तुमने समझ लिया होगा और आशा है कि अब अधिक प्रश्न न करोगे।

जिज्ञासु—यहाँ तक तो मैं समझ गया परन्तु जिन प्रश्नों को लेकर मैंने यह बात छेड़ी थी वह तो अभी खटाई में पड़ी हुई है।

शिव—तो उसे भी कह डालिये।

जिज्ञासु—क्या आप बुद्ध धर्म्म के अनुयायी हैं?

शिव—हाँ और नहीं।

जिज्ञासु—दोनों बातें कैसे सम्भव हो सकती हैं?

शिव—यदि बुद्ध के अनुयायी होने से तुम्हारा यह मन्तव्य है कि हम नाम के बुद्ध कहलायें और नियमानुसार उनके मन्दिर और विहार में रहकर उनके अनुयायी माने जायें तब तो हम बुद्ध नहीं हैं और यदि बुद्ध धर्म्म के सर्व्व व्यापक सिद्धान्त की दृष्टि से यह माना जाये कि शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हमारा आदर्श है तो हम पर क्या निर्भर प्रत्येक मनुष्य जो भूमण्डल, चन्द्रमण्डल सूर्य्य मण्डल में रहता हुआ इस विचार को दृढ़ करता होगा वह भी सच्चे अर्थ में बौद्ध कहा जा सकता है। बुद्ध धर्म्म कोई छोटा मोटा तो नहीं है।

जिज्ञासु—आश्चर्य्य की बात है! हम लोग तो आपको अब तक कुछ और ही समझते रहे हैं।

शिव—तो तुम ठीक हो। हम वह भी हैं और कुछ और भी हैं। हम कट्टर और पक्षपाती तो नहीं होना चाहते। आदर्श की व्याख्या तुम्हारे सामने कर दी गई। अब तुमको अधिकार है हमें जैसा चाहो वैसा समझो। हम तुम से लड़ने झगड़ने तो नहीं जाते। सारी बातें मनुष्य के निज विचार पर निर्भर हैं। जिसका जैसा भाव है वह वैसा ही समझता, बूझता, मानता और जानता है परन्तु क्या ही अच्छा हो कि जो तुम हमको समझ रहे हो वह भी कह डालो जिसमें भ्रम में न पड़ो।

जिज्ञासु—हमने तो सुन रक्खा है कि आप ने परम पुरुष हुजूर महाराज से दीक्षा पाई है और राधास्वामी के अनुयायी हैं।

शिव—यह सच है।

जिज्ञासु—परन्तु इस समय तो आप बुद्ध धर्म्म का राग

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

अलापते हैं यदि कोई सुनले तो वह अवश्य कहेगा कि आप बौद्ध हैं।

शिव—तो इसमें हमारी हानि क्या है? हमको इसका क्या भय है कि संसार क्या कहता है!

जिज्ञासु—भय न सही परन्तु भ्रम तो उत्पन्न होता है।

शिव—जब हमने आप मान लिया है कि **पूर्णधनी हुजूर महाराज** के चरणों में बैठकर हमने परमार्थ की शिक्षा पाई है और उनके सेवकों में होने के अभिमानी हैं तो फिर भ्रम क्यों उत्पन्न होने लगा? **हुजूर महाराज** ने हमको निष्पक्षता की दृष्टि दी और हम उदारता के साथ सारे पन्थों की व्याख्या करते हैं। यदि हम उनके पवित्र चरणों तक न पहुंचे होते तो हम में भी वही कट्टरपना और पक्षपात् होता जो और सम्प्रदायों और पन्थाइयों में है परन्तु तुम देखते हो कि हम किसी सम्प्रदाय या पन्थ की निन्दा नहीं करते। जो जैसा है उसको उसकी दृष्टि से दिखाने का यत्न करते हैं और यह बात केवल उन पवित्र चरणों की धूलि आंखों में लगाने के कारण है।

जिज्ञासु—क्या **राधास्वामी पन्थ और बुद्ध धर्म्म** में कुछ सम्बन्ध है?

शिव—इस प्रश्न से तुम्हारा क्या अभिप्राय है?

जिज्ञासु—मैं जानना चाहता हूं कि आप क्यों बुद्ध धर्म्म की इतनी महिमा गाते हैं?

शिव—मैं यदि किसी की निन्दा करता तो उस समय तुम अवश्य यह प्रश्न कर सकते थे।

जिज्ञासू—फिर भी कोई न कोई बात होगी तब आप उसे इतने गौरव की दृष्टि से देखते हैं।

शिव—बात यह है कि सन्तों का अवतार, सन्तों की शिक्षा का प्रचार और सन्त मत का प्रकाश सदैव बुद्ध अवतार के पीछे होता है। बुद्ध का अवतार द्वापर के अन्त और कलियुग के आदि में होता है और जब तक कल्कि भगवान नहीं प्रकट होते तब तक बुद्ध ही का राज संसार में रहता है। यह दया का धर्म्म है। आत्मिक जगत् में यह अहिंसा का मार्ग है। सन्तों का धर्म्म भी दया और अहिंसा, प्रेम और भक्ति का पन्थ है। इस समय के आचार्य्य संत ही होते हैं। जैसे अवतार थे वैसे ही उस समय के आचार्य्य भी थे। और किसी समय दया और अहिंसा का प्रचार इस प्रकार नहीं हुआ था जैसा इस समय होता है। यह संत मत और बुद्ध धर्म्म में एकता और सदृशता है।

पाँचवीं बैठक

अनेक आवश्यक प्रश्नों के आवश्यक उत्तर

[जीव, ईश्वर, ब्रह्म, तुरिया, तुरियातीत]

जिज्ञासू—महाराज! किसी ऐसे सुगम नये और निराले ढङ्ग से पञ्चनाम की व्याख्या कर दीजिये जिसमें भली भांति मैं सहज में समझ जाऊँ कि **गुरूनानक** जी ने जो

"पञ्च नाम[१] धुनकार[२] धुन[3] बाजे शब्द[४] निशान[५]"

कहा है उसका आशय क्या है?

शिव—यह कड़ी यों है:—

"पञ्च शब्द धुन्कार धुन बाजे शब्द निशान"

परन्तु नाम और शब्द में कोई भेद नहीं है। दोनों का भावार्थ एक है। गुरू साहिब की यह बाणी भेदी और पारखीके लिये तो बहुत ही स्पष्ट है परन्तु जो भेदी और पारखी नहीं हैं उनके लिये निरर्थक और ऊटपटाँग है क्योंकि (१) नाम (२) धुन्कार (३) धुन बाजे (४) शब्द और (५) निशान सब का अर्थ लगभग एक है। चार शब्द का अर्थ तो एक जान ही पड़ता है परन्तु पांचवां 'निशान' इन से भिन्न प्रतीत होता है। वास्तव में जो वह हैं वही यह भी है। खोजी और जिज्ञासू को शब्दों में अटकने की आवश्यकता नहीं है। उसको चाहिये कि शब्दों में जो अर्थ है उस पर ध्यान दे। यदि वह ऐसा करेगा तो बात सुगमता से समझ में आजायगी और यदि वह एक एक शब्द में अटक रहा तो तत्त्व उसकी समझ में न आयेगा। वह आत्म शिक्षकों और संतों के गूढ़ रहस्य को भी न समझ सकेगा। यह बाणी जो तुमने अभी सुनाई है उसमें पाँच भिन्न अवस्थाओं का वर्णन है। चार तो कहने में आती हैं परन्तु पांचवीं केवल निशान (चिन्ह) मात्र अर्थात् उसको कुछ कुछ केवल अनुभव से समझ सकते हैं और यदि अनुभव न हो तो फिर तुम जान लो कि उस तक मन और वाणी का पहुंचना कठिन है। कोई उसको कहे भी तो क्या कहे, क्योंकि वह कहने का विषय नहीं है।

(१) नाम जीव है। (२) धुन्कार ईश्वर है। (३) धुन-बाजे ब्रह्म है। (४) शब्द तुरिया है और (५) निशान तुरियातीत है। यह इस वाणी का अर्थ है।

जिज्ञासू—यह आपने निराली और नई बात कही है जो

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

इस समय आपके अतिरिक्त विर्ला ही पुरुष कह सकता होगा या कहने का साहस करेगा। जीव, ईश्वर, ब्रह्म, तुरिया, तुरियातीत तो प्रसिद्ध और प्रचलित शब्द हैं। वेदान्ती भी इनको जानते हैं और इनका प्रयोग करते रहते हैं परन्तु **गुरू नानक साहिब** की वाणी में तो उनका कोसों पता नहीं है।

शिव– यह क्यों ?

जिज्ञासू—इसलिये कि उसके शब्द और हैं और यह परिभाषायें और हैं।

शिव—देखा ! तुम शब्दों में अटक ही गये। देहवादी बने, आत्मवादी नहीं बने। इसीलिये तो हमने पहिले ही कह दिया था कि जब कोई भेदी, विवेकी और पारखी न हो तब तक उसको किस प्रकार समझाया जाय और वह कैसे समझेगा ?

जिज्ञासू—आप उनके परस्पर सम्बन्ध को समझाइये, उस समय सम्भव है कि यह हमारी समझ में आने लगे।

शिव—जीव से लेकर तुरिया पद तक एक ही सिलसिला है केवल उनके प्रत्यक्ष रूप में भेद है। हम तुमको यों समझाते हैं:—

नाम जीव है। जीवपना लक्ष है। किसी एक या कई नाम एक या कई भाव, एक या कई विश्वास और एक या कई अवस्थाओं में अटकना जीवपने का लक्षण है। नाम, भाव, विचार, विश्वास और भ्रम में फँसने ही का नाम तो जीव है। जो एक या अनेक में अटका वह स्थूल दृष्टि से नाम और रूप वाला हुआ। जैसा विचार वैसी अवस्था। वह इस एक या अनेक की अवस्था से ऊपर न जायेगा क्यों कि बन्धन में फँसे हुये और बद्ध ही का नाम जीव है। हम जीव केवल

उसको कहते हैं जो विचार, विश्वास और भ्रम की अवस्था के बन्धन में लिपटा हुआ पड़ा है। जीव और कुछ नहीं है। वह केवल अपने विचार और विश्वास के तार या धागों में बँधा हुआ है और इसी एक चिन्ह से तुम उसे समझ सकते हो। जिसका जैसा विचार होगा वैसा ही उसका कर्म्म भी होगा। जिसका जैसा कर्म्म होगा वैसा ही उसका रूप होगा। बहुरूपिया जिस नाम, विचार और कर्म्म को लेकर रूप भरता है वह वैसा ही तो कहलायेगा और उस समय वह उसी विशेष नाम के बन्धन में रहेगा और उसी नाम से पुकारा जायेगा। यह बन्धन और फँसाव की अवस्था जीवपने का चिन्ह है। यह जड़ और चैतन्य की ग्रन्थि है। जहाँ इन द्वन्द अवस्थाओं का व्यवहार देखो समझ लो यहाँ जीव है। यह तो तुम समझ गये और यदि समझ गये तो जीव का रूप तुम्हारी समझ में आ गया।

जिज्ञासू—बड़ी विलक्षण व्याख्या है और है भी सच। इससे इन्कार कौन कर सकता है? हम सब जीवों का आधार विचार और विश्वास ही तो है और उन्हीं के अनुसार हमारे बचन और कर्म्म होते हैं। मैं जीव के लक्ष को तो समझ गया अब और आगे चलिये। धुन्कार की व्याख्या कीजिये।

शिव—धुनकार नाम है सुर का, अलाप का, शब्द की धार और चाल का। यह नाम ईश्वर का है।

जिज्ञासू—ऐसा तो कोई नहीं कहता! ईश्वर ऐसा कैसे हुआ?

शिव—सुनो:—

बिन खुर चले, सुने बिन काना।
बिन कर कर्म्म, करे विधि नाना ॥१॥

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

आनन रहित, सकल रस भोगी।
बिन बानी, वक्ता बड़ योगी ॥२॥

शब्द धार रूप में चलता है। उसके स्थूल पाँव नहीं होते। वह बिना कानों के सुनता है क्योंकि उसमें विवेक और बुद्धि होती है। उसके हाथ नहीं है परन्तु वह सब काम करता है। किसी गाने वाले के सुर को देखो। वह लोगों के हृदय पर अपना प्रभाव डाल देता है। कभी रुलाता है कभी हँसाता है। उसके मुँह नहीं है परन्तु वह भोग भोगता है। उसका भोग ऐश्वर्य्य है जिस कारण से वह ईश्वर कहलाता है। शब्द की महिमा, उसकी शक्ति और उसका प्रभाव यही उसका ऐश्वर्य्य और भोग है। उसके जिह्वा नहीं है परन्तु बोलता है और वह बड़ा योग वाला है। उसमें सिद्धि और शक्ति का भण्डार है। अभी तुमने सुना है कि गाने वाला अपने सुर से रुलाता, हँसाता, डराता, धमकाता, लड़ाता और उभारता रहता है। वह निर्बन्ध है क्योंकि वह नस और नाड़ी के बन्धन में नहीं है। यह ईश्वर है। यह धुनकार अर्थात् गूँजने वाला शब्द है जो अपने मण्डल में गूँज रहा है। जीव तो विचार और विश्वास के बन्धन में पड़ा हुआ है। इसका कोई बन्धन नहीं। इसको कोई बाँध नहीं सकता। यह सर्व शक्तिमान है। यह बन्धन की खुली हुई अवस्था का नाम है। धुन्कार बन्धन रहित है। वह गूँजता हुआ सर्व व्यापक शब्द है। अब आई बात तुम्हारी समझ में या नहीं?

जिज्ञासु—धन्य हैं आप! और धन्य है आपकी व्याख्या! परन्तु शब्द तो किसी शब्द करने वाले के आधीन होगा?

शिव—तुम यहाँ साधारण शब्दों को धुन्कार समझ रहे हो। शब्द की परिभाषा संत मत में और है। वह आप सब का जन्मदाता है। खुली हुई धार को बन्धन और आधीनता

में न समझना चाहिये नहीं तो वह धुनकार न होगी। इसकी पूर्ण व्याख्या आगे चलकर दी जायेगी जिससे तुम्हारा भ्रम जाता रहेगा।

जिज्ञासु—तो उसको भी सुनाइये।

शिव—वह धुन (ध्वनि) है, धुन नाम है ब्रह्म का। धुनकार तो गूँजते हुये शब्द को कहते हैं। जो धुन के आसरे काम करे वह धुन्कार है। धुन एक समुद्र है जिसके आधार पर लहरें उठती रहती हैं। इन लहरों का उठते रहना, बन्धन में न आना धुन्कार है और इसलिये धुन ब्रह्म है और धुन्कार ईश्वर है। ब्रह्म तो समुद्र है और समुद्र का लहरों को लिये हुये उसके आधार पर लहराते रहना ईश्वर है। ईश्वर और ब्रह्म में वैसे ही भेद नहीं है जैसे समुद्र और उसकी लहरों की एकता में भेद नहीं है। समुद्र न लहरों का समूह है और न लहरों का समूह समुद्र है परन्तु समुद्र को लहरों से अलग या लहरों को समुद्र से अलग किसने देखा ? इसी प्रकार ईश्वर ब्रह्म है और ईश्वर ब्रह्म नहीं है। अभेद दृष्टि से तो वह ब्रह्म से न्यारा नहीं है परन्तु भेद दृष्टि से तुम उसमें नाम मात्र भेद चाहे आरोपण कर लो। ईश्वर कर्त्ता, धरता, न्यायकारी, सर्व्व शक्तिमान है। ब्रह्म में कर्त्ता धरता पना इत्यादि के गुण आरोपण नहीं किये जाते। जो सब में रमा हुआ सबसे न्यारा है वह ब्रह्म है। जिसमें न न्याय, है न अन्याय, न बुराई है न भलाई, वह ब्रह्म है परन्तु इस ब्रह्म के आधार पर ब्रह्म से एक होता हुआ जो न्याय करता है, जीवों को उनके कर्म्मानुसार फल देता है और महान् शक्ति वाला है वह ईश्वर है। यहाँ यदि विचार करो तो 'आधीनता का प्रश्न' एक प्रकार से सुलझ जाता है और यदि विवेक और परख नहीं है तो वह सुलझता भी नहीं है।

जिज्ञासु—इसकी कुछ और व्याख्या कर दीजिये।

शिव—और भी सुन लो, जो माया सबल ब्रह्म है वह ईश्वर है और जो शुद्ध है वह ब्रह्म है परन्तु यह स्मरण रहे कि यह सारी बातें जीव की दृष्टि से कही जा रही हैं।

जिज्ञासु—मैं इस स्मरण रखने का भेद समझता हूं और मुझे बोध भी बहुत कुछ हो गया है क्योंकि मैंने वेदान्त के ग्रन्थ पढ़े हैं और इन परिभाषाओं की थोड़ी बहुत समझ भी रखता हूँ। गुरू नानक साहिब की बाणी में धुन का शब्द नहीं है धुन बाजे का शब्द है। उसकी व्याख्या अभी तक नहीं हुई।

शिव—आहा! हम तो भूल गये। धुनबाजे का शब्द ध्यान से जाता रहा नहीं तो और भी अच्छी और उत्तम व्याख्या हो गई होती। धुनबाजे का अर्थ है "धुन का बाजा" अर्थात् जैसे धुन्कार धुन के बाजे से निकलती है वैसे ही इस ब्रह्म के आधार पर ईश्वर का खेल होता रहता है। यहाँ वृहदारण्यक उपनिषद् की एक श्रुति याद आगई। वह यह है:—"जैसे जब कोई मनुष्य डफले को न देखे जिसके बजने से शब्द होता है परन्तु डफले के देखने से शब्द का पता लगता है, जैसे जब कोई मनुष्य शङ्ख को न देखे जिसकी फूँक से शङ्ख का शब्द होता है परन्तु शङ्ख के देखने से शङ्ख की ध्वनि का पता लगता है उसी प्रकार यह ऋग, यजुर, साम वेद उसके स्वांस ही हैं।" अब तुम देखो यहाँ भी धुन्कार और धुन बाजे के शब्द आये हैं। "सौ सयाने एक मत।" इसी प्रकार अब तुम धुन्कार और धुनबाजे में शब्द से ब्रह्म और ईश्वर के व्यवहार का कुछ अनुमान कर सकते

हो। जीव ईश्वर और ब्रह्म की इस प्रकार यहाँ व्याख्या कर दी गई।

जिज्ञासु—वाद विवाद तो बहुत हो सकता है परन्तु मैं आपकी व्याख्या से इनका रूप कुछ कुछ समझ गया। अब शब्द की व्याख्या कीजिये जिसको आपने तुरिया बताया है।

शिव—शब्द आवाज़ को कहते हैं परन्तु तुमको यह सदैव ध्यान रखना चाहिये कि **संत मत** में शब्द का अर्थ साधारण आवाज के अतिरिक्त उस चिन्ह, उस इष्ट और उस आदर्श का भी किया जाता है जिसके सहारे जीव, ईश्वर और ब्रह्म का प्रकाश होता है और जिस पद तक पहुंचकर उनके रूप प्रकट होते हैं उसी को तुरिया कहते हैं। यदि तुरिया न प्राप्त हो तो फिर यह भली भाँति समझ में भी न आयें। बातों से, विचार से और विवेक से चाहे इनका थोड़ा बहुत अनुमान कर लो परन्तु साक्षात्कार नहीं होता। इसीलिये **संत मत** की परिभाषा में उसको **तुरिया** कहा गया है। शब्द ही चैतन्य और चैतन्य का आत्मा है। शब्द ही प्रकाश और प्रकाश की जान है। बिना शब्द के किसी का पता नहीं लगता। **गुरु ग्रन्थ साहिब** के पढ़ने वाले **कबीर साहब** के बीजक को नहीं पढ़ते जो **संत मत** की आदि वाणी है। इसलिये वह **ग्रन्थ साहिब** को भी ज्यों का त्यों नहीं समझते और साधारण रीति से **ग्रन्थ साहिब** को भजन संग्रह समझकर प्रेम और भक्ति के साथ उसको गा तो लेते हैं परन्तु सार तत्त्व उनके हाथ नहीं आता, नहीं तो **ग्रन्थ साहिब** के एक एक शब्द अमूल्य रत्न हैं जो बहुत ही विचारने योग्य हैं। **कबीर साहिब** इसी को सार

शब्द कहते हैं और हुजूर राधास्वामी साहिब की बाणी औ
विशेषकर सार बचन छन्द बद्ध में इसकी बहुत अच्छी व्याख्
की गई है जो और कहीं कठिनता से मिलेगी। आपका वचन है:—

"शब्द प्रगट तब धरिया नाम।
शब्द गुप्त तब रहा अनाम॥"

यह शब्द है। यह तुरिया पद है। यही इष्ट है। यही आदर्श है और इसी के लिये सब यत्न और साधन किये जाते हैं। जो यहां तक नहीं पहुँचते वह ब्रह्म पद तक पहुँचकर भी आवागमन से मुक्त नहीं होते और उत्थान के समय उसी प्रकार उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के सिलसिले में खिचे चले आते हैं जैसे सारे जीव जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति में बारी-बारी से चक्कर लगाया करते हैं। यहां हम तुमको इतना और बता देना आवश्यक समझते हैं कि जाग्रत जीवपना है, स्वप्न ईश्वर-पना है और सुषुप्ति ब्रह्मपना है जैसे जाग्रत और स्वप्न दोनों सुषुप्ति के आधार पर काम करते हैं वैसे ही ब्रह्म के आधार पर जीव और ईश्वर का व्यवहार होता है। सुषुप्ति तक तो पहुंचने को सभी पहुँचते हैं परन्तु सुषुप्ति के रूप का भान नहीं होता क्योंकि तुरिया पद की प्राप्ति नहीं हुई है और ज्ञान अधूरा रह जाता है और कल्प कल्पान्तर की मुक्ति के पश्चात् फिर भवसागर में आना पड़ता है। इसलिये अभ्यास द्वारा इस तुरिया का साक्षात्कार करना परमावश्यक है। केवल वाचक ज्ञान से काम नहीं चलता। लो इस शब्द अर्थात् तुरिया पद की भी व्याख्या हो गई।

जिज्ञासु—परन्तु तुरियातीत पद अभी रह गया है जिस

को आपके वचनानुसार **गुरू नानक साहिब** ने 'निशान' कहा है।

शिव—सुनो, तुरिया को प्राप्त करके उसकी प्राप्ति के ध्यान को मेट देना और उसके भी अङ्कुर को न रहने देना तुरियातीत है। यह नाम के लिये तो पाँचवीं अवस्था है परन्तु चौथी अवस्था अर्थात् तुरिया से अलग नहीं है। तुरिया तक पहुंचकर जब अभ्यासी में तुष्टि आ जाती है और वह उसमें लय हो जाता है तब उसी लय का नाम सत् है। और यही सत् निशान (चिन्ह) मात्र है जिसको सङ्केत रूप में समझ लो परन्तु इस पर अधिक बात चीत करना व्यर्थ है। जो लोग इस पद को प्राप्त कर चुके हैं वह फिर मुँह नहीं खोलते। **गुरू नानक साहिब** ने इसीलिये उसको निशान मात्र कहा है। सुनो **कबीर साहिब** की वाणी है:—

"जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, ताहि काल नहिं खाय॥"

इस साखी में भी वही पाँच अवस्थायें हैं जिनका वर्णन **नानक साहिब** की इस वाणी की व्याख्या में हमने किया है। (१) जाप जीव (२) अजपा ईश्वर (३) अनहद ब्रह्म (४) शब्द तुरिया और (५) अकाल होना तुरियातीत है। हम आशा करते हैं अब तुम समझ गये होगे। यदि **नानक साहिब** के सच्चे शिष्य हो तो भाई! पक्षपात को छोड़ो, कभी कभी हमारे पास आकर **गुरू ग्रन्थ साहिब** का पाठ किया करो। हम भी लाभ उठावेंगे और तुमको भी हमारी व्याख्या का लाभ पहुँचेगा। यों ही अगड़म बगड़म इसका पाठ क्या करते हो।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

समझकर पढ़ो तब काम निकले। देखो! इस कड़ी में शब्द जीव से लेकर शब्द तुरियातीत तक का भेद बताया गया है।

जिज्ञासू—बहुत अच्छा! छुट्टी के समय आया करूँगा। आपने केवल एक ही कड़ी का अर्थ इस प्रकार समझाया है और किसी को इस बात का ध्यान तक नहीं है कि इस एक कड़ी में इतना ज्ञान का सार भरा पड़ा है।

शिव—हुजूर राधास्वामी साहिब ने गुरू ग्रन्थ साहिब की बड़ी महिमा **सार बचन राधास्वामी** नामक पुस्तक में वर्णन की है। वह यों ही तो नहीं है। कोई बात होगी तब तो ऐसा कहा है।

जिज्ञासू—आज्ञा हो तो यह पूरा शब्द गाकर आपको सुना दूं? फिर कभी आप से पूरे शब्द की व्याख्या पूछूँगा।

शिव—सुनने को तो मैंने इस शब्द को सुना है। बहुत अच्छा। तुम गाकर सुना दो।

जिज्ञासू—

शब्द

घर में घर दिखलाइ दे, सो सत् गुरु पुरुष सुजान।
पंच शब्द धुन्कार धुन, बाजे शब्द निशान।
तार घोर बाजन्तरा, तहाँ साँच तख्त सुलतान।
सुखमन के घर राग सुन, सुन्न मँडल को लाय।
अकथ कथा विचार ले, मनसा मनहिं समाय।
सब सखियाँ पाँचो मिलीं, गुरुमुख निज घर बास।
शब्द खोज जो घर लहे, नानक ता का दास॥

राधास्वामी मत, कबीर मत और नानक मत की तालीम व सचाई की विशेषता

[ले० परमसंत दयाल फ़कीरचन्द जी महाराज]

जज्बये दिल[1] मजबूर करता है और लिख रहा हूं बाहोश हूं।
खामुश नहीं है प्रभु नहीं है, जनूनी[2] नहीं न मदहोश[3] हूँ ॥
मानता हूं समझनेवाले कम हैं, फिर भी मजबूर होकर लिख रहा।
क्योंकि मुर्शिदे कामिल[4] के अहसान से होना चाहता
सुबकदोश[5] हूँ ॥

सुबुकदोशी[6] (उऋण होना) भी मजबूरी (विवशता है)। दुनिया में आया। होश आया। खोज की। किस की? कि मैं कौन हूं? मेरा आधार कहाँ है? धार्मिक जगत के प्रभावों ने उन्मत्त बना दिया। फिर स्वप्न ने विश्वास दिलाया कि तेरा आधार मालिक या कुछ और कहो दाता दयाल महर्षि शिवब्रतलाल के रूप में आया हुआ है। पतंगा बनकर दीपक पर प्राण देने लगा। वहां से राधास्वामी मत के अपने शब्दों के आधार पर नाम की दीक्षा मिली। जीवन में अनुभव होते गये। चूंकि दाता दयाल ने अपना सांसारिक जीवन मेरी दृष्टि से इस कारण से [illegible] कि वह जीवन भर राधास्वामी शब्द के सहारे प्रकाशन का कार्य्य करते रहे। परिणाम यह हुआ कि दूसरे धर्मों के लोग पक्षपात के कारण उनसे लाभ न उठा सके। स्वयं राधास्वामी मत वाले गुरुइज्म की गलत

(१) हृदय के भाव (२) उन्मत्त (३) अचेतन्य (४) सतगुरु (५) उऋण (६) उऋणता

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

समझ के कारण उनसे भागते रहे और सचाई के रहस्य को न समझ सके ।

दूसरों के सम्बन्ध में क्या कहूँ मेरे अपने समुदाय के बहुत से भाई कोरे रहे । कोरे रहने से मेरा अभिप्राय यह है कि वह अपनी सांसारिक, मानसिक और आत्मिक जीवन में तुष्टि प्राप्त न कर सके । प्रारम्भ में मेरी भी यही दशा थी । इसका कारण केवल यह था कि दाता दयाल का कथन इशारों या संकेत रूप में होता था । मेरे हृदय पर सार बचन पद्य व गद्य तथा धार्मिक पुस्तकों की विचार धारा का गहरा प्रभाव था और कुछ मानसिक दुर्बलतायें ऐसी थीं जिनके कारण मैं बहुत दिनों तक अपनी कुरेद को मिटाने में सफल न हो सका । विवश होकर मुझे भिन्न भिन्न अनुभवों की श्रेणियों से गुजरना पड़ा ताकि वह अभीष्ट वस्तु मुझे मिल जाय । उनमें से पहिली अवस्था-अपने आप में सच्चा होना, दूसरी अवस्था— अपने आपको पूर्णतया अपने आधार के शरणागत कर देना, तीसरी अवस्था— अपने आपको हर प्रकार के निज स्वार्थ से स्वतंत्र रखना है ।

जीवन के अनुभव ने जहाँ पहुंचाया था जो समझाया उसको अपने प्रारब्ध कर्म भोग के आधीन प्रगट करने को विवश हूँ । मैंने अपने अनुभव को प्रगट करने में बहुत कुछ सचाई से काम लिया है । सचाई प्रिय लोग और वह सज्जन, जो इस मार्ग पर चले हैं, उसको सच मानते हैं । हाँ, पक्षपाती, टेकी या गुरुभाई के प्रेमी सम्भव है सहमत न हों ।

संयोग से कल एक गाँव में सत्संग में गया । सत्संग में साधारणतया बाणी को लेकर उसकी व्याख्या की जाती है । रीति के अनुसार मैं भी उस विधि के पालन करने के लिये विवश हो गया । शब्द निकला:—

मैं कहूँ कौन से भाई । कोई मेली नजर न आई ॥

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

जो बात सन्त बतलाई। काहू से मेल न खाई ॥
त्रिलोकी सभी सुनाई। चौथे का मर्म न गाई ॥
जिन चौथा लोक जनाई। सो अचरज करते भाई ॥
कोई माने न बहुत मनाई। अब क्योंकर करू़ लखाई ॥
मैं समझ यही चित लाई। बिन मेहर न श्रद्धा आई ॥
जो सत् गुरु होंय सहाई। तो सभी बात बन जाई ॥
तातें यह गिनत मिटाई। राधास्वामी चुप रहाई ॥

मित्रो ! राधास्वामी मत की शिक्षा है:—

तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा। सत् नाम सतगुरु गति चीन्हा

इसी चौथे पद का संस्कार दाता दयाल ने मुझे दिया था। आज मैं इसी की व्याख्या करना चाहता हूं।

मगर शोक है वाणी मेरी मदद नहीं है कर सकती।
लाख करू़ मैं कोशिश इजहार नहीं है कर सकती ॥
फिर भी हिम्मत बांधकर आया हूं मैदान में।
ठेकेदार हूं समझाने का गर इच्छा है किसी इंसान में ॥

सुनो ! आन्तरिक श्रेणियाँ जो कि मनुष्य के अपने ही व्यक्तित्व के भान व बोध हैं उनकी अन्तिम श्रेणी क्या है ? योगियो, अभ्यासियो, ध्यानियो ! बताओ अन्तर में क्या मिलता है ?

वही, जिस प्रकार के संस्कार, विचार, इच्छा या वाह्य प्रभाव तुम्हारे मन पर पड़े हुये होते हैं, चाहे वह प्रभाव माँ बाप से लिये गये हों या पुस्तकों के पढ़ने अथवा सुनने और देखने से प्राप्त किये गये हों।

जिसकी जितनी इच्छा शक्ति शक्तिशाली होती है उसके ख्याल, संस्कार, वाह्य प्रभाव और इच्छायें उसके अन्दर विकसित होकर उतनी ही प्रतिबिम्बित या अक्स डालती होती

हैं। यह बात सर्वथा ठीक है और इसी का नाम काल और मा है। जो वस्तु इन समस्त दृश्यों को देखती, सुनती अथवा अनुभव करती है या जो साक्षी रूप में इस तमाम खेल का आधार है; वह क्या है?

वह तुम्हारा व्यक्तित्व है, ज़ात है, स्वरूप है। जब मनुष्य को यह समझ आ जाती है उसका व्यक्तित्व इस त्रिलोकी के खेल को देखता, सुनता और अनुभव करता हुआ भी इसके प्रभावों से बरी (स्वतंत्र) रहता है। इस अनुभव या ज्ञान के पूर्ण रूपेण निश्चयात्मक होने का नाम ही चौथा पद है। लेकिन याद रक्खो, जब तक तवज्जह या बोधन शक्ति अन्तर के शब्द में लय होकर अशब्द गति को प्राप्त न कर लेगी, पूर्ण निश्चय न होगा। अतः आवश्यक है कि किसी पूर्ण पुरुष की संगत से लाभ उठाया जाय। इसलिये संत मत में जीवित और पूर्ण पुरुष जो स्वयं चौथे पद का वासी हो, की संगत को महत्व दिया गया है। याद रक्खो! यह केवल एक कोर्स (मार्ग) है जो थोड़े समय में तै हो सकता है। मगर इसमें शिक्षा का वही सिद्धान्त काम करता है कि जैसे हर विद्यार्थी बी० ए०, एम० ए० नहीं हो जाता, इसी तरह हर अभ्यासी इस अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता।

शरीर मन और आत्मा त्रिलोकी हैं। इन्हीं का दूसरा नाम सत्-चित्-आनन्द है। इसी प्रकार रचना में माया देश, काल देश और दयाल देश की त्रिलोकी है। शारीरिक चेष्टाओं में खेलने के लिये प्रत्येक व्यक्ति विवश है मगर इनके खेलों में भिन्नता रहती है। इसी प्रकार से प्रत्येक प्राणी के मानसिक विचार भिन्न भिन्न होते हैं तथा हर अभ्यासी, हर योगी और प्रत्येक ध्यानी के आंतरिक दृश्यों में भिन्नता रहती है। इस भिन्नता का कारण उनकी अपनी प्रकृति और वाह्य प्रभाव होते

हैं। जब तक जीवन है खेलना अवश्य है। अंतर केवल इतना है कि चौथे पद में रहने वाले का खेल नियमित और संयमित होता है। अन्य लोगों की यह दशा नहीं होती। हाँ, जो मनुष्ये किसी पूर्ण पुरुष की संगत का लाभ उठाये हुये होते हैं वह अपने खेल को अपनी संकल्प शक्ति से बहुत कुछ श्रेष्ठ बना सकते हैं। अन्य लोगों के लिये इसका होना कठिन है। कहा है—"ब्रह्म ज्ञानी आप परमेश्वर"।

मैं अपने अनुभव के आधार पर जोरदार शब्दों में कहता हूँ कि जब तक देश के धार्मिक सामाजिक या राजनैतिक नेता चौथे पद के वासी न होंगे उनसे मनुष्य जाति की उन्नति की आशा रखना कठिन है। हाँ, कठिन है। मैं इसके प्रमाण में वर्तमान स्थिति की ओर आपका ध्यान दिलाता हूँ।

ईश्वर पूजा—यह कैसे दुख की बात है कि ईश्वर, परमेश्वर या ब्रह्म की जन साधारण पूजा करते हैं और यही उनके जीवन के पूर्ण आदर्श हैं और इन्हीं के नाम पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी बन बन कर मनुष्य मनुष्य के रक्त के प्यासे बन रहे हैं। कारण इसका यह है कि जातियों या पार्टियों के नेता चौथे पद का अनुभव नहीं रखते और गलत पथ-प्रदर्शन करते हैं।

गुरु पूजा—जो मनुष्य गुरु पूजा के मानने वाले और विश्वास रखने वाले हैं वह भी पक्षपात, हार्दिक-संकीर्णता, अज्ञान और जड़ता के कारण एक दूसरे के गुरुओं को बुरा भला कहते हैं और अपने अनुचित व्यवहार से घृणा फैलाते हैं। कारण क्या है? यही कि चौथे पद का अनुभव नहीं रखते। चौथे पद का बासी किसी दशा में भी घृणा और द्वेष के प्रभाव में नहीं आ सकता।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

राजनैतिक जगत—देश के भीतर भिन्न-भिन्न पार्टियां—कॉंग्रेस, सोशलिस्ट, जनसंघ, कम्युनिष्ट आदि काम कर रही हैं और प्रत्येक पार्टी दूसरी पार्टी के विरुद्ध सत्ता प्राप्त करने अथवा स्थापित करने का प्रयत्न करती हैं। यह सब अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार कार्य्य कर रही हैं। मगर प्राकृतिक नियम से अनभिज्ञ हैं।

पात पात को सींचते, वृक्ष को दिया सुखाय।
माली सींचे मूल को, ऋतु आये फल खाय॥

जब तक पथ-प्रदर्शकों और नेताओं के हृदय में सच्चा ज्ञान और सच्ची समझ न आयेगी और जन साधारण उस पर चलेंगे नहीं तो देश में शान्ति नहीं आ सकती।

घरेलू जीवन—कौनसा भाग्यशाली गृहस्थ है जहाँ परिवार के सब लोग मेल जोल और खुशी से जीवन व्यतीत करते हैं। घर घर में लड़ाई, भाई भाई में झगड़ा, सास बहू की अनबन और पति पतिनी में खेंचातानी। क्या यह सुखदायक दशा है? कारण क्या है? इसका किसी को ज्ञान नहीं। वह ज्ञान चौथे पद में रहने वाली महान आत्मा से मिलता है।

मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन—प्रत्येक मनुष्य दुखी और अशान्त दीख पड़ता है क्योंकि इसे ज्ञान नहीं कि सुख और शान्ति कहाँ है। सुख और शान्ति शरीर के संयम, मन के संयम और बुद्धि के संयम में है। और इनको संयम में रखने की शिक्षा केवल वह पुरुष दे सकता है जो चौथे पद का वासी है।

इसीलिये महात्माओं, संतों और पूर्ण पुरुषों ने चौथे पद का अनुभव करने के पश्चात् अपना अनुभव वर्णन किया और मानव जीवन की उन्नति के लिये केवल एक उपाय, युक्ति या

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

मंत्रणा इस कलियुग में प्रगट की। वह है केवल नाम दान—

कलि केवल इक नाम अधारा।
श्रुति स्मृति संत मत सारा॥

और वह नाम पूर्ण पुरुष के आधीन रक्खा गया है। इसी का नाम सच्चा गुरु मत है।

मैं सबको यही मंत्रणा देता हूं और उनसे प्रार्थना करता हूँ कि जीवन व्यतीत करने के उचित मार्ग का ज्ञान प्राप्त करें जो चौथे पद के अनुभव के पश्चात् होगा।[1] जब तक जीवन है दुनिया में निष्पक्ष, निर्वैर, निर्भय और समता की अवस्था में जीवन बितायें। स्वयं जीयें और दूसरों को जीने दें।

मुझे भली प्रकार याद है कि कि जब मैं बसरा बगदाद में था तब दातादयाल ने मुझे आदेश दे रक्खा था कि फ़कीर! ऐसी अवस्था में रहो कि जहाँ जाओ वहाँ तुम्हारी ओर लोग देखने को विवश हों। मैं इस रहस्य को उस समय न समझ सका। यदि कुछ समझा हूं तो अब इतना समझा हूँ कि संगत के फल के अनुसार जैसी वस्तु को देखोगे वैसे ही संस्कार तुम में आवेंगे।

मैंने जब सत्संग के कार्य को प्रारम्भ किया है तो मुझे भी सोचना चाहिये कि मैं क्या दे सकता हूँ। सत्संग औषधालय या स्कूल की हैसियत रखता है। मेरे पास शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रोगों की दवाई है। वह मैं सत्संग में देता हूँ। जो मेरे पास आते हैं उनको आनन्द (खुशी) निश्चिन्तपना

(१) इस विषय को 'मानव धर्म' पुस्तक के प्रथम भाग में वर्णन किया है और द्वतीय भाग, जो शीघ्र प्रकाशित होगा, में व्यवहारिक तथा अमली जीवन को सुखमय शान्तिमय बनाने को महाराज जी की अनुभव पूर्ण शिक्षायें होंगी।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

(बेफिक्री) अशोकपना सन्तुष्टि ६० फीसदी तक मिलती है। इसकी जानकारी मुझे लोगों के अनुभवों के सुनने से भी हुई है।

हाँ, वह खुशी व निश्चिन्तता आदि हर एक व्यक्ति के पास स्थायी रूप से नहीं रहती है। स्थाई रूप से लेने के लिये साधन का मार्ग है अर्थात् जो व्यक्ति अपने अन्तर में उस स्थान पर ठहरे जिस स्थान पर मैं ठहर कर आनन्द आदि लेता हूँ, तब वह वस्तु या अवस्था स्थायी हो सकती है।

सत्संग में मैं उस ज्ञान या समझ को प्रगट करता हूँ जिसको यदि कोई समझले और साधन करे तो वह स्वयं उस अवस्था को अपने अन्तर स्थायी रूप से रख सकता है। इस साधन का नाम—नाम जप या सुमिरिन ध्यान और भजन है।

असली और सच्चा लाभ अर्थात सच्ची स्वतंत्रता अथवा त्रिगुणात्मक जगत से निकलना केवल उसी समय होगा जब कोई ऐसे पुरुष का सत् संग करे जो स्वयं इस त्रिगुणात्मक जगत से स्वतंत्र हो अर्थात् चौथे पद का वासी हो, मगर उसके अधिकारी बहुत ही कम लोग होते हैं। जो व्यक्ति इस सांसारिक जीवन को उच्च और सुखदायक बनाना चाहता है और संत पद में रह कर अपने व्यक्तित्व को मिटाना चाहता है उसको किसी पूर्ण पुरुष का सत्संग अनिवार्य है। यदि मानव आनन्द सर्व सम्पन्नता, निश्चिन्तता आदि प्राप्त करना चाहे तो उसको इस नियम को ग्रहण करना चाहिये। वह यह है:—

जैसा ख्याल वैसा हाल, जैसी करनी वैसी भरनी, जैसी सृष्टी वैसी दृष्टी, जैसी गति वैसी मति। चूंकि मनुष्य को यह ज्ञान नहीं है कि कहां, कब और कैसे विचार करना है इसलिये किसी पूर्ण पुरुष के सत्संग को मुख्य रखा गया है।

महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज कृत

हिन्दी की पुस्तकों का परिचय पत्र

महारामायण—महर्षि जी ने रामायण के सात काण्डों को योग साधन की सात सीढ़ियाँ बताकर गुप्त विधियों को स्पष्ट रूप से वर्णन किया है और भगवान राम के जीवन से उसे प्रगट किया है। प्रत्येक मनुष्य को अपना जीवन क्रियात्मक साँचे में ढालने के लिये अमूल्य रत्न है। प्रथम संस्करण समाप्त-सा है। इसके दो खंड—

अनुभव खंड व सिद्धि खंड बड़े महत्व के हैं। इनका मूल्य १॥) ।

आत्मिक प्रायमर उर्फ आत्म ज्ञान प्रकाश——जीवन के ध्येय को समझाने वाली, भूले और भ्रमों में फँसे हुये लोगों को स्पष्ट रूप से सद्मार्ग दिखाने वाली सरल और सुगम भाषा की बड़ी उत्तम पुस्तक है। मू० ॥)

कानून ख्याल—जैसा कि इस पुस्तक के नाम से प्रकट है इसमें विचार का नियम या क़ानून क्या है, कैसे काम करता है, उचित और अनुचित विचारों का क्या फल होता है, विचार में क्या-क्या शक्ति भरी पड़ी है आदि आदि, विषयों पर काफी प्रकाश डाला गया है। बड़े महत्व की पुस्तक है। मू० १)

जैन वृतान्त—जैन राजघराने के महात्माओं और देवियों के त्याग, वैराग, घोर तपस्याओं और संयम नियम की गाथायें बड़ी शिक्षाप्रद हैं। चूंकि महापुरुष किसी जाति, धर्म या समाज विशेष की सम्पत्ति नहीं होते, उनके उपदेश और जीवनी सभी के लिये लाभप्रद होती हैं। मू० ॥)

दृष्टान्त संदेश—दृष्टान्तों द्वारा जीवन के सुधार के लिये आत्मिक ज्ञान के गूढ़ विषयों को बड़ी सुगमता से समझाया गया है। मू० १)

हितोपदेश—महर्षि जी ने अपनी अल्प आयु की नव पुत्र-वधू को जो उपदेश दिये हैं, इसमें वर्णन हैं। स्त्रियों के लिये बड़ी उपयोगी है। मू० ॥)

आदर्श भारतीय वीरांगनायें—साहस, वीरता, त्याग और प्रेम के भावों को भरने वाली गाथायें हैं। मू० १)

आदर्श भारतीय महिलायें—भारतीय नारियों के आदर्श जीवन की पतिव्रत धर्म, ज्ञान और प्रेम भक्ति से परिपूर्ण कथायें हैं, जो जीवन में अनुपम जागृति उत्पन्न करनेवाली हैं। मू०१)

उपन्यास के ढंग पर ऐतिहासिक पुस्तकें

(इनको पढ़कर कल्पित उपन्यास पढ़ना भूल जायेंगे)

शाही पतिपरायण—गुजरात देश की रानी के पतिव्रत धर्म का आदर्श और त्याग व प्रेम का रोमाँचकारी, हृदय विदारक और शिक्षाप्रद वर्णन है। मू० १।)

शाहीभूत—देश के एक गद्दार और नमक हराम ने किस प्रकार कुटिलता से चित्तौड़गढ़ का पतन कराया और उसके भ्रष्टाचार पूर्ण कृत्यों का अन्तिम परिणाम कितना दुखदाई हुआ तथा भूतयोनि की व्याख्या और मानव विचारों का पुनर्जन्म अथवा भूतयोनि से सम्बन्धित वर्णन है। मू० १)

गिरहदार मोती—एक ऐतिहासिक घटना का बड़ा प्रभाव-शाली, शिक्षाप्रद और रोमाँचकारी वर्णन है। मू० १)

इब्राहीम अधम—एक मुसलमान बादशाह के प्रेम, भक्ति, सादा जीवन और राज के त्याग का बड़ा हृदय विदारक वर्णन है। मू० ॥=)

डाक खर्च सब का अलग है।

'मनुष्य बनो' हिन्दी मासिक पत्र "मनुष्य बनो कार्यालय, दयाल कम्पाउण्ड (पेच जामाजी) अलीगढ़ से प्रकाशित होता है। परम संत दयाल फ़क़ीरचन्द्र जी महाराज के अनुभवपूर्ण वचन इसमें विशेषरूप से प्रकाशित होते हैं। अवश्य मंगाना चाहिये मूल्य केवल ३) रु० वार्षिक।

संतों के दर्शन——सन्त महात्माओं के फ़ोटो व सुन्दर चित्र सब साइज़ में नीचे लिखे पते पर मिलते हैं। एक बार मंगाकर देखिये।

भाई श्याम राव, नन्दू कुटिया, नाम पल्ली, लाल टीकरी
हैदराबाद दक्षिण, मकान नं० ८३४।

'दयाल' उर्दू मासिक पत्र दयाल स्वरूप श्री नन्दूसिंह जी के सम्पादकत्व में १६-१७ वर्ष से प्रकाशित हो रहा है। इसमें महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज के अनमोल वचन निकलते हैं। अवश्य मंगाइये। इसका वार्षिक मूल्य डाक खर्च सहित ६।) रु० है।

शब्द गुञ्जार (उर्दू)—इस पुस्तक में महर्षि जी के अत्यन्त रसीले और मनोहर शब्दों का संग्रह है। रोजाना पाठ के लिये एक बड़ी उत्तम पुस्तक है। रियासत हैदराबाद में तो हर जगह के सत्संग में इसका पाठ होता है। केवल थोड़ी कापियाँ हैं। एक कापी का मूल्य १।) रु० डा० ख० अलग।

'दयाल योग' (उर्दू)—महर्षि शिवव्रतलालजी महाराज का संक्षिप्त जीवन चरित्र अमूल्य बचनों सहित तीन भागों में २४० पृष्ठ में है। हर भाई के पढ़ने योग्य है। मूल्य केवल २॥) रु० डाक खर्चा अलग।

शब्द सार (हिन्दी) नित्य पाठ के लिये अमूल शब्दों का संग्रह। मूल्य केवल ॥।) डा० ख० अलग।

पता—'शिव साहित्य प्रकाशन मंडल, दयाल भंडार,
केशवगिरी, हैदराबाद दक्षिण'

परमसंत दयाल फ़कीरचन्द जी महाराज कृत पुस्तकें

१. इन्सान बनो उर्दू ॥=)
२. आवागवन ,, १)
३. विश्व हितैषी ,, १॥)
४. विश्व प्रेमी ,, ॥)
५. मानव धर्म प्रकाश ,, १॥)
६. नश्यरे अनवर ,, ॥।)
७. सदाये फकीर ,, ।=)
८. हयाते नौ ,, ।)
१०. निष्कलंक अवतार ॥)
११. फकीर शब्दावली ।=)
१२. परमार्थ सुधार ॥)
१३. इब्राहीम अधम ॥=)
11. Real Independance -/4/
14. Truth & Reality -/6/-
15. Independance leaflets -/2/-
१६. दयाल संहिता उर्दू महर्षि शिवब्रतलाल कृत ॥।)
१७. गुटका शब्द संग्रह हिन्दी ।)
१८. योगी हिन्दी ≡)

पता:—

'मनुष्य बनो' कार्यालय

दयाल कम्पाउण्ड (पेच जामाजी)
अलीगढ़ (उ० प्र०)

—:❀:—

फ़कीर साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

१. "मनुष्य बनो" हिन्दी ॥=)
२. विश्व शान्ति ,, ।)
३. मानव धर्म प्रकाश प्र० भाग ,, ॥।)
४. आवागमन उर्फ जीवन रहस्य १)
५. पचास वर्षीय फकीर अनुभव ॥)
६. उन्नति मार्ग ।)
६. एक बावले व दाना फकीर (दयाल फ़कीर) की जीवनी ।)
८. एक फकीर की घोषणा सप्रेम अमल
६. यथार्थ संदेश ।)
१०. Be man -/4/-

---

१. महर्षि शिवब्रतलाल कृत महारामायण अनुभव खंड व सिद्धि खंड } १॥)

मिलने का पता—

फ़कीर साहित्य प्रकाशन

शिव भवन, खेखराज नगर अलीगढ़ सिटी (उ० प्र०)